Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५.३ V2

ओम्

मातृभूमि वंदना

(अथर्ववेदीय पृथ्वीसूक्त)

卐

व्याख्याकार :
डॉ. भवानीलाल भारतीय

卐

दयानन्द अध्ययन संस्थान, जोधपुर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

147/4

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

वैदिक मातृभूमि वंदना

(अथर्ववेद (काण्ड १२ सूक्त १) के सुप्रसिद्ध पृथ्वी-सूक्त की सरस व्याख्या)

卐

व्याख्याकार

प्रो. (डॉ.) भवानीलाल भारतीय

सेवानिवृत्त प्रोफेसर तथा अध्यक्ष—दयानन्द शोधपीठ,
(पंजाब विश्वविद्यालय)

卐

दयानन्द अध्ययन संस्थान, जोधपुर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशक :

दयानन्द अध्ययन संस्थान,
रत्नाकर, नन्दनवन, जोधपुर—३४२ ००८

卐

प्राप्ति स्थान :

* डा. भवानीलाल भारतीय
८/४२३, नन्दनवन, जोधपुर

* आर्य साहित्य विक्रय केन्द्र,
आर्यसमाज, सरदारपुरा, जोधपुर

* श्री विरजानन्द संस्कृत महाविद्यालय,
करतारपुर (पंजाब)

卐

मूल्य : २० रुपये (बीस रुपये)

卐

प्रथमावृत्ति—२०५० वि. १९९३ ई.

卐

मुद्रक—हिन्दुस्तान आर्ट प्रिण्टर्स, जोधपुर फोन : २५२७७

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान ... सं० 1893 ... पुस्तकालय

अथर्ववेदीय पृथ्वी सूक्त और मैं

(लेखकीय वक्तव्य)

अथर्ववेद के १२ वें काण्ड का प्रथम सूक्त पृथ्वीसूक्त के नाम से प्रसिद्ध है। इसे वेद का राष्ट्रीय गीत अथवा धरती माता का स्तवन भी कहा गया है। लगभग पैंतालीस वर्ष पुरानी बात है। मैं आर्यसमाज गुलाब सागर जोधपुर का सदस्य था। उन दिनों मैं तथा मेरे कुछ समवयस्क आर्यसमाजी मित्र नियमित रूप से रोज संध्या के समय उक्त समाज मंदिर में एकत्रित होते, अनेक प्रकार की चर्चायें होतीं तथा आर्यसमाज की नवीनतम गतिविधियों पर विचार विमर्श भी चलता। एक दिन एक प्रौढ़ आयु के पंजाबी सज्जन रात्रि के समय आर्यसमाज में आये तथा वेदव्रत चौधरी के नाम से अपना परिचय दिया। उनका जोधपुर का यह प्रवास लगभग एक सप्ताह का था और इस अवधि का उपयोग उन्होंने हमारे समाज मंदिर में इसी अथर्ववेदीय पृथ्वीसूक्त की व्याख्या करके किया। यद्यपि श्रोताओं की संख्या अधिक नहीं होती थी, किन्तु वक्ता चौधरी महाशय को इसी वात का सन्तोष था कि कुछ नवयुवक इस वैदिक प्रसंग को सुन रहे हैं, जिसमें माता धरित्री का काव्यात्मक स्तवन तो है ही, धरती माता के नाना चित्र विचित्र रूपों, रंगों तथा उसके बहुविध नैसर्गिक वैभव की दिव्य एवं मनोरम झांकी भी प्रस्तुत की गई है। लगभग आधी सदी गुजर जाने के पश्चात् आज भी याद है कि पृथ्वीसूक्त के इस व्याख्याता ने सूक्त के ११ वें मंत्र में धरती की इस माटी के विविध रंगों-बभ्रु, कृष्णा, रोहिणी आदि का उल्लेख करते हुए इस विश्वरूपा भूमि की वंदना की थी। पं. वेदव्रत चौधरी ने ४५ वें मंत्र की चर्चा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
करते हुए धरती पर रहने वाले तथा नाना प्रकार की बोलियों को बोलने वाले मनुष्यों का उल्लेख कर कहा कि यह धरती विभिन्न कर्त्तव्य - कर्मों को करने वाले, भिन्न-भिन्न प्रकार की भाषाओं को बोलने वाले, बहुरूप वाले बृहत् जन समाज का इस प्रकार पालन करती है, जैसे एक ही घर में रहने वाले प्राणी समन्वित रूप में, मिलजुल कर अपना जीवनयापन करते हैं। अथर्ववेदीय पृथ्वीसूक्त से मेरा यह पहला परिचय था।

इसके पश्चात् गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के विगत आचार्य पं. प्रियव्रत वेद वाचस्पति लिखित पृथ्वी सूक्त की बृहद् व्याख्या वेद का राष्ट्रीय - गीत का प्रकाशन हुआ। इस ग्रन्थ का मैंने आद्योपान्त अध्ययन तो किया ही, इसके आधार पर जोधपुर, अजमेर तथा चण्डीगढ आदि नगरों में विस्तृत कथायें एवं प्रवचन भी किये। तब से यह बात निरन्तर मन में आती रही कि धरती माता की महिमा का काव्यात्मक वर्णन करने वाले इस अमर सूक्त की एक सुगम और लोकरञ्जक व्याख्या प्रस्तुत की जानी चाहिए। प्रस्तुत ग्रन्थ मेरे इसी संकल्प की क्रियात्मक अभिव्यक्ति है।

इस अवधि में मैंने आर्यसमाज के अनेक विद्वानों द्वारा लिखे गये पृथ्वीसूक्त के विभिन्न अनुवादों को मनोयोग पूर्वक पढ़ा तथा सूक्त के सभी ६३ मंत्रों में व्यक्त उद्गारों पर चिन्तन करता रहा। अन्ततः मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि धरती के विराट्, सर्वतोभद्र तथा महनीय रूप का जैसा दिग्दर्शन इस मंत्र संग्रह में कराया गया है, वैसा संसार के किसी भी काव्य या साहित्य में मिलना दुर्लभ है। यदि इस सूक्त के मंत्रों पर सरसरी निगाह डालें तो हमें विदित होता है कि इनमें पृथ्वी पर निवास करने वाले मानव समूहों के विविधतापूर्ण क्रिया कलाप, उनके धार्मिक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान 1823

इति कर्त्तव्य, उनके जीविकोपार्जन के साधन, कृष्यादि विविध व्यवसाय आदि तो वर्णित हुए ही हैं, इसी धरती पर रहने वाले गौ, अश्व आदि पशु, इस पर उत्पन्न होने वाले विविध औषधि, वनस्पति, वृक्ष, लता, गुल्म, धरती के गर्भ से निकलने वाले नाना मूल्यवान् खनिज पदार्थ, पृथ्वी पर नियमित रूप से आने वाला षड् ऋतुओं का चक्र, नाना गुहा, कन्दरा तथा भू गर्भ में बिल बना कर रहने वाले जीव जन्तु, संक्षेपतः, मानव तथा मानवेतर सृष्टि का भी रोचक एवं तथ्यपरक वर्णन मिलता है। इस दृष्टि से यह सूक्त उस मातृभूमि के भव्य चित्र को विराट् फलक पर उपस्थित करता है जिसकी वन्दना इस सूक्त के द्रष्टा ऋषि ने विश्वम्भरा, वसुधानी, प्रतिष्ठा, हिरण्यवक्षा जैसे अर्थ गर्भित विशेषणों के द्वारा की है। इस व्याख्या के लेखन में मैंने पं. प्रियव्रत जी तथा स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ द्वारा लिखी गई व्याख्याओं का भूरिशः उपयोग किया है।

इस ग्रंथ के प्रकाशन में सर्व श्री स्वामी सर्वानन्द जी महाराज दयानन्द मठ, दीनानगर, पं. हरिवंशलाल शर्मा जालन्धर तथा श्री यशवीर आर्य (साउथ इण्डिया ट्रांसपोर्ट बैंगलोर) ने उदार आर्थिक सहायता प्रदान की है, तदर्थ उनका आभारी हूँ। हिन्दुस्तान आर्ट प्रिंटर्स के स्वामी श्री एम. ताहिर साहब तथा प्रूफ संशोधक श्री जवरीलाल भोभरिया के प्रति भी धन्यवाद अर्पित करता हूँ, जिनके समुचित सहयोग और कुशल प्रबंधन के कारण इस ग्रंथ का सुचारु मुद्रण सम्भव हो सका। वेद के अध्ययनशील पाठकों को संसार की प्राचीनतम मातृभूमि वंदना की यह मनोज्ञ व्याख्या पसन्द आयेगी, इस आशा के साथ।

'रत्नाकर' नन्दनवन, जोधपुर — भवानीलाल भारतीय
आषाढ़ कृष्णा ३, वि. सं. २०५०

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमिका

मुझे इस पुस्तक के विषय में दो शब्द लिखते हुए अत्यंत हर्ष हो रहा है। पुस्तक कई दृष्टियों से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इसमें दुनिया के प्राचीनतम साहित्य की एक अमूल्य भेंट प्रस्तुत है। मातृभूमि की वन्दना में लिखे गए ६३ मंत्रों का सूक्त अथर्ववेद से लिया गया है। प्रत्येक मंत्र की विस्तृत व्याख्या जनसामान्य की दृष्टि से करते हुए, लेखक ने सर्वथा व्यावहारिक शैली को अपनाया है। भारतीय जी ने इस लघु पुस्तिका में भारतीयता के आधारभूत समाज विज्ञान का परिचय करा दिया है।

विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ होते हुए भी, वेदों की विषय-वस्तु चिर-नवीन एवं सनातन है। अतः मातृभूमि की वंदना में, पाठकों को जो राष्ट्र धर्म और देशभक्ति के विचार इस पुस्तक में मिलेंगे, वे सर्वथा मौलिक एवं आधुनिक होंगे। उदाहरण के लिए, निम्नलिखित मंत्र को ले लीजिए—

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती॥

अर्थात्, यह भूमि विविध भाषाओं को बोलने वाले और अनेक धर्मों का अनुसरण करने वाले जनसमूह को ऐसे धारण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
करती है जैसे कि मानो वह एक ही घरबार हो। वह धन की सहस्रों धाराओं का दोहन करती हुई भी ऐसी चुपचाप रहती है कि मानों वह एक ध्रुव धेनु हो (मंत्र ४५)।

गुरुकुल कांगड़ी पुस्तकालय 1893
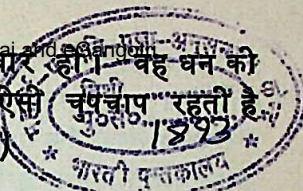
आज के विश्व की सबसे बड़ी समस्या यही है कि पृथिवी के सभी निवासी एक घर वार बनाकर कैसे रहें? यह व्यापक रक्तपात, हिंसा, शोषण और ईर्ष्या-द्वेष छोड़कर मनुष्य जाति में एकता की भावना कैसे आए? प्रथम महायुद्ध के बाद 'लीग आव नेशन्स' बनी। बनते-बनते ही उसमें घुन लग गया—उसके निर्माण में भागीदार होकर भी अमेरिका उसका सदस्य नहीं बना। दूसरे महायुद्ध के पश्चात् संयुक्त राष्ट्र संघ फिर विश्व-शांति का लक्ष्य लेकर खड़ा हुआ, परन्तु युद्ध फिर भी होते रहे हैं, मनुष्य मनुष्य का रक्त बहाता रहा है। मानव जाति आज तक विज्ञान के क्षेत्र में अभूतपूर्व दक्षता प्राप्त करके भी 'वसुधैव कुटुंबकम्' को चरितार्थ करने के उपाय नहीं ढूंढ़ पाई।

प्रस्तुत पुस्तक प्रथम मंत्र की व्याख्या में ही उन उपायों का वर्णन करती है—बृहत् सत्यम्, ऋतम् उग्रम्, तप, दीक्षा, ब्रह्म और यज्ञ ही वे उपाय हैं, जिनके द्वारा समस्त पृथिवी की जनसंख्या को सुख-समृद्धि की उपलब्धि कराई जा सकती है। सत्य, ऋत, तप आदि पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग द्वारा यहाँ समाज-विज्ञान के जिन सनातन सिद्धान्तों की ओर संकेत किया गया है वे आज हमारे लिए अपना प्राचीन भाव को खोकर अर्थहीन हो गए हैं। उसका कारण यह है कि वेदों की प्रतीकवादी शैली से हम सर्वथा अनभिज्ञ हो गए हैं। यदि उसे हम पुनः हृदयङ्गम करके वेदार्थ को ग्रहण कर सकें, तो हमारी सभी समस्याएँ सुलझ सकती हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदाहरण के लिए, एक विश्व राष्ट्र की स्थापना को ही ले लीजिए। प्रस्तुत सूक्त का आठवाँ मंत्र बड़े नपे-तुले शब्दों में हमें बतलाता है कि समस्त पृथिवी पर एक उत्तम राष्ट्र की स्थापना के लिए मनुष्य जाति को जिस तेजस् और बल की आवश्यकता है वह कहाँ से मिलेगा। मंत्र इस प्रकार है—

यार्णवेऽधि सलिलमग्र आसीद्यां मायाभिरन्वचरन्मनीषिणः।
यस्या हृदयं परमे व्योमन्त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः।
सा मे भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे। (अ. वे. १२.१.८)

निस्संदेह हमारे मनीषियों ने उस आतंरिक अग्रभूमि की खोज की थी, जो किसी उत्तम राष्ट्र में तेजस् और बल का सञ्चार कर सकती है। उसी से उन्हें पूर्वोक्त ऋत्, सत्य, ब्रह्म, यज्ञ, तप और दीक्षा के सिद्धान्त प्राप्त हुए और कम से कम इस देश में तो उन्होंने एक ऐसा राष्ट्र खड़ा किया था जिसमें विविध भाषा-भाषियों और नाना धर्मानुयायियों का एक समाज शताब्दियों से बना हुआ है। इन्हीं वैदिक सिद्धान्तों के कारण, इस देश के लिए यह संभव हुआ कि उसने विश्व की अनेक जातियों को अपने यहाँ शरण दी। यहूदी, ईसाई और पारसी जब शत्रुओं द्वारा पादाक्रान्त स्वदेशों से भागे, तो उन्हें यहाँ शरण मिली और वे आज तक यहाँ सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं।

यही बात जब मैंने एक अमेरिकन विश्वविद्यालय की गोष्ठी में कही, तो लोग आश्चर्यचकित हो गए। परन्तु हमारे बुद्धिजीवी जन इसे स्वीकार नहीं करते। उनकी दृष्टि में, इस देश को एक राष्ट्र बनाने वाले विदेशी थे और हमारे पूर्वज तो जंगली थे। उनकी धारणा है कि हमारा उद्धार विदेशी भाषा, विदेशी आचार-विचार और विदेशी रहन-सहन से ही सम्भव है। वे भारतीय संस्कृति को खिचड़ी संस्कृति मानते है, परन्तु भूल जाते

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं कि आज की तथाकथित खिचड़ी संस्कृति का अस्तित्व तभी तक है, जब तक इसका वैदिक आधार बना हुआ है। परन्तु आज़ादी के बाद वह आधार जिस तेजी से क्षीण हुआ है, वही तेजी चलती रही तो कुछ वर्षों में वही हाल हो जाएगा जो अफ्रीका, सोवियत रूस, यूगोस्लाविया आदि देशों के विभिन्न क्षेत्रों में हो रहा है।

देश के लिए, इस शताब्दी का शेष भाग सर्वाधिक चेतावनी-भरा होगा। विश्व में होने वाली उथल-पुथल से हमें शिक्षा लेनी चाहिए। आधुनिक विज्ञान-युग ने भौतिक सुख-सुविधा के अभूतपूर्व साधन जुटाए, सुखलिप्सा की पराकाष्ठा पैदा की और अपने बन्धु-बान्धवों की रक्तपिपासा को भी खूब बढ़ाया, परन्तु नैतिक बल एवं जीवन-मूल्य देने में वह सर्वथा असमर्थ है जो इस देश को और विश्व को वेदों से प्राप्त हुए। विश्वमानुष की वह कल्पना जिसने हमें विश्व प्रेम, सहिष्णुता, उदारता तथा व्यापक अहिंसा के संस्कार दिए निस्संदेह वेदों की देन हैं। वेद ने जब 'विश्वामित्रस्य ब्रह्मेदमं रक्षति भारतंजनम्' का घोष किया था, तो अभिप्राय इसी वर्धनशील सिद्धान्त से था। यह सिद्धान्त मानव मात्र ही नहीं, जीवमात्र का कल्याण करने वाला है।

आशा है भारतीय जी का यह प्रयास हमारे देश के जन-साधारण को वेदों की ओर पुनः ले जाने में सहायक होगा, बुद्धि-जीवियों को वैदिक ज्ञान की गहराइयों में जाने की प्रेरणा देगा तथा शासकों को पुनर्विचार करने के लिए विवश करेगा।

(डा.) फतहसिंह

सेवानिवृत्त निदेशक, राजस्थान
प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समर्पण

लेखक के पारिवारिक कुलपुरोहित,

परबतसर वास्तव्य,

स्व. पं. रामपाल जी व्यास

की पावन स्मृति में,

जिनके द्वारा सम्पन्न कराये जाने वाले चैत्री और शारदीय नवरात्र के दुर्गापूजा, सप्तशती पाठ, अष्टमी के होम तथा श्रावणीय रुद्राभिषेक आदि कर्मकाण्डों में उच्चरित स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः, भद्रंकर्णेभिः शृणुयाम देवाः, द्यौ शान्तिः आदि वेदमंत्रों ने बाल्यकाल में ही लेखक के मन में वेदविषयक कुतुहल एवं जिज्ञासा को उत्पन्न किया, जिससे आगे चलकर उसने वेदादि आर्य शास्त्रों के अध्ययन को अपने जीवन का प्रमुख लक्ष्य बनाया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्रानुक्रमणिका

(अथर्ववेद, काण्ड १२, सूक्त १)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति ।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरु लोकं पृथिवी नः कृणोतु ।।

अथर्ववेद के भूमि सूक्त के इस प्रथम मंत्र का द्रष्टा ऋषि अथर्वन् और देवता भूमि है। पृथ्वी के धारक तत्त्व कौन-कौनसे हैं? हमारा राष्ट्र और इसी प्रकार संसार के अन्य राष्ट्र किन तत्त्वों के सहारे सुदृढ चट्टान की भांति खड़े हैं। निश्चय ही वेद ने संसार में भिन्न-भिन्न राष्ट्रों की कल्पना नहीं की, किन्तु संसार के इस प्राचीनतम ग्रन्थ में पृथिवी या भूमि को ही मानव तथा अन्य प्राणिसृष्टि का निवास तथा आधार बताया गया है। अतः वेद उन्हीं तत्त्वों की व्याख्या करता है जो पृथ्वी को धारण करने में सक्षम हैं। प्रायः यह समझा जाता है कि शासक ही राष्ट्र की नियति होता है। जैसा शासक हमें मिलेगा राष्ट्र का अभिवर्धन, संवर्धन तथा प्रगति भी उसी कोटि की होगी। अन्य विचारक कभी-कभी काल को भी राष्ट्र की प्रगति का नियामक मानते हैं। हम ऐसे लोगों को प्रायः यह कहते सुनते हैं कि ज़माना खराब आ गया और वे इस ज़माने को ही देश के दुर्भाग्य एवं दुर्दशा के लिये उत्तरदायी ठहराते हैं। किन्तु वेद का चिन्तन कुछ भिन्न प्रकार का है। यहाँ सत्य, बृहत् ऋत, उग्र, दीक्षा, तप, ब्रह्म और यज्ञ, इनको पृथ्वी को सुचारु धारण करने वाले तत्त्व बताया हैं। यही वे तत्त्व या गुण हैं जिनसे किसी राष्ट्र

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की सम्यक् स्थिति, अभिवृद्धि तथा पालन होता है। अतः हमें क्रमशः इन सातों तत्त्वों पर विस्तारपूर्वक विचार करना चाहिए।

सत्य—सत्य की महिमा सर्वोपरि है। सत्य का धारण मनुष्य के वैयक्तिक जीवन के सुचारु संचालन के लिये तो आवश्यक है ही, वह राष्ट्र के समष्टिगत संचालन के लिये भी अनिवार्य है। सत्य का धारण व्यक्ति की ही भांति समष्टि के लिये भी उपयोगी, अपरिहार्य तथा श्रेयस्कर है। प्रायः यह समझा जाता है कि राज्य संचालन में कभी-कभी पाखण्डपूर्ण आचरण और अनृतयुक्त छल भी लाभदायक होता है। किन्तु वेद इस धारणा का समर्थन नहीं करता। आर्यशास्त्रों में सत्य को सर्वोपरि नैतिक गुण स्वीकार किया गया है। इसी कारण उपनिषद्कार ऋषि ने 'सत्यमेव जायते नानृतम्' का उद्घोष किया तो स्मृतिकार मनु ने सत्य को धर्म के दस लक्षणों में स्थान दिया और प्रिय सत्य बोलने का आग्रह किया। महाभारत में सत्य के महत्त्व को वर्णित किया गया है। योगदर्शन के प्रणेता महर्षि पतञ्जलि ने सत्य को पांच यमों में अहिंसा के बाद का स्थान दिया तथा इसकी सिद्धि के परिणाम को बताने वाला जो सूत्र 'सत्य प्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्' (साधनपाद ३६) बनाया उसकी व्याख्या में ऋषि दयानन्द ने इस प्रकार लिखा— 'सत्याचरण का ठीक-ठीक फल यह है कि जब मनुष्य निश्चय करके केवल सत्य ही मानता, बोलता और करता है तब वह जो-जो योग्य काम करता है और करना चाहता है वे-वे सब सफल हो जाते हैं।' (ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका-उपासना प्रकरण)।

सत्य के बाद **ऋत** को पृथ्वी का धारक तत्त्व बताया है। 'ऋत' मूलतः वैदिक शब्द है। ऋत और सत्य का प्रायः युग्म

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के रूप में प्रयोग वेदों में अनेकत्र मिलता है। यथा 'ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्' सामान्यतया ऋत और सत्य को समानार्थक माना गया है, किन्तु यदि ऐसा होता तो फिर पृथक् दो शब्दों की आवश्यकता ही क्यों होती ? अतः ऋत और सत्य में विवेक करना आवश्यक है। परमात्मा के नित्य ज्ञान को ऋत कह कर सम्बोधित किया गया है। ईश्वर जिन नित्य नियमों के द्वारा सृष्टि की रचना, पालन तथा संहार करता है, वही ऋत है। अतः पृथ्वी के धारण तथा संचालन करने वालों के लिये यह भी आवश्यक है कि वे पूर्ण आस्तिक हों तथा विश्व के सर्वोपरि संचालक परमात्मा के उस गुण का ज्ञान प्राप्त करें जिसके द्वारा वह सृष्टि का निष्पक्ष संचालन करता है। मंत्र में बृहत् पद सत्य के बाद और ऋत के पहले पड़ा है। इसे हम सत्य और ऋत दोनों के विशेषण के रूप में प्रयुक्त कर सकते हैं। उस स्थिति में महान् सत्य और महान् ऋत इन दोनों तत्त्वों की निर्विवाद आवश्यकता मानी गई है।

उग्रता—तीसरा तत्त्व है जो राष्ट्र संचालन और धरती के सम्यक् धारण के लिये आवश्यक है। राष्ट्र के विधाता राजा को सौम्य और उद्दण्ड, सज्जन और दुष्ट, साधु और असाधु विभिन्न प्रकृति के लोगों से निपटना होता है इसलिये वह इन लोगों से यथायोग्य व्यवहार करता है। साधु के प्रति साधु जैसा व्यवहार और दुष्ट के प्रति वैसा ही दृढतापूर्ण आक्रामक रुख अपनाना उसके लिये आवश्यक होता है। राष्ट्र संचालन एक असामान्य प्रक्रिया है। इसके लिये क्षात्र प्रकृति की आवश्यकता होती है। संस्कृत वाङ्मय में ब्रह्म और क्षत्र की जो कल्पना है वह गूढाशय लिये हैं। ब्राह्म तत्त्व जहाँ सौम्य और आध्यात्मिक प्रकृति का सूचक है, वहाँ क्षात्र तत्त्व उग्रता, तेज तथा क्षत्रियोचित

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्चस्व का प्रतीक है। इन दोनों गुणों का सामञ्जस्य ही राष्ट्र का हितसाधक होता है। अतः वैदिक साहित्य में यत्र तत्र ब्रह्म और क्षत्र के समन्वय और साथ-साथ क्रियाशील होने का उल्लेख मिलता है। यजुर्वेद में कहा गया है—

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेशं यत्र देवा सहाग्निना॥ (२०/२५)

अन्यत्र नीति के ग्रन्थों में 'शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्र-चिन्ता प्रवर्त्तते' कह कर शास्त्रों का अभ्यास और मनीषियों का चिन्तन वहीं सम्भव एवं निरापद बताया गया है जो राष्ट्र शास्त्रों द्वारा सदा रक्षित रहता है। वैदिक संस्कृति के अग्रदूत के रूप में उस रौद्रकर्मा भगवान् परशुराम जैसे ऊर्जा सम्पन्न पुरुष की कल्पना की गई है जो यदि अपनी वाणी पर चारों वेदों को धारण किये हैं तो उनकी पीठ पर बाणों से युक्त धनुष भी शोभा देता है। इस प्रकार के अद्भुत और महान् व्यक्तित्व के धनी ही ब्राह्म और क्षात्र दोनों प्रकार की शक्तियों का यथा समय, यथावश्यकता उपयोग करते हैं। यदि शाप की आवश्यकता पड़े तो वह भी, और शरसंधान से काम बनता हो तो उन्हें धनुर्धारण करने में भी विलम्ब नहीं होता---

अग्रतश्चतुरो वेदाः पृष्ठतःसशरं धनुः।
इदं ब्राह्मं इदं क्षात्रं शापादपि शरादपि॥

स्मृतिकार मनु ने वेद कथित इस उग्रता का दूसरा नाम दण्ड रक्खा है जिसके बल पर राजा अपनी प्रजा का शासन करता है—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति ।
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः ।। (७/१८)

दण्ड ही प्रजा का शासन करता है और वही उसकी रक्षा करता है। सोई हुई प्रजा निर्भय और निश्शंक होकर सुखद निद्रा का उपभोग करती है, क्योंकि वह जानती है कि राजा का दण्ड इस रात में भी जागकर सर्वत्र धूर्तों, वंचकों, चोरों और उच्चकों पर निगाह रक्खे हुए है। इसलिये विद्वानों ने दण्ड और धर्म को समानार्थक माना है।

भारत के इतिहास में एक युग ऐसा आया जब ब्राह्म और क्षात्र शक्तियों के समन्वय और सामञ्जस्य को भुलाकर मात्र वैराग्य प्रधान श्रमण धर्म को ही श्रेयस्कर स्वीकार किया गया। इस समय बड़े-बड़े युवराज और राजकुमार भी अपने क्षत्रियो-चित कुल धर्म को विस्मृत कर त्याग और वैराग्य का जीवन व्यतीत करने लगे। इन्द्रियनिग्रह और देह दण्डन को ही जीवन का एक मात्र लक्ष्य मान लिया गया और निरीह प्रजा को अनार्य दस्युओं तथा आततायियों का ग्रास बनने के लिये छोड़ दिया गया। तभी तो ब्राह्म और क्षात्र वृत्ति का समन्वय करने वाले आचार्य विष्णुगुप्त चाणक्य को कहना पड़ा—"राष्ट्र का शुभ चिन्तन केवल ब्राह्मण ही कर सकते हैं। एक जीव की हत्या से डरने वाले तपस्वी बौद्ध सिर पर मंडराने वाली विपत्तियों से आर्यावर्त की रक्षा करने में असमर्थ प्रमाणित होंगे।"—जयशंकर प्रसाद कृत चन्द्रगुप्त।

दीक्षा भी राष्ट्र का एक प्रमुख विधायक तथा धारक तत्त्व है। राष्ट्र रक्षा के लिये स्वयं को सर्वात्मना समर्पित करने वाले

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीक्षित लोग ही इस महत् कार्य को सिद्ध कर सकते हैं। जिस प्रकार किसी विशेष यज्ञ याग तथा इष्टि को सम्पन्न करने के पहले यजमान यज्ञकर्म में दीक्षित होता है और 'व्रतेनदीक्षामाप्नोति' (यजुर्वेद) आदि मंत्रों को पढकर सकल्पनिष्ठ होता है, उसी प्रकार पृथ्वी का संधारण करने वाले क्षत्रिय सम्राट् को भी स्वव्रत की दीक्षा लेनी पड़ती है। यजुर्वेद के राज्याभिषेक प्रकरण में इसी प्रकार के मंत्र संगृहीत हैं जो राजा को अपने कर्त्तव्य की ओर उन्मुख करते हैं। निश्चय ही देश को पराधीनता के पाश से मुक्त कराने तथा उसे पुनः स्वाधीनता दिलाने में ऐसे ही दीक्षित देशभक्तों का बड़ा भारी पुरुषार्थ रहा है।

दीक्षा के पश्चात् तप का उल्लेख है। दीक्षित व्यक्ति का जीवन अब अपने लिये नहीं रहा। उसके सारे कार्य देश हित की भावना से किये जाते हैं। उसने यज्ञ में आहुति देते समय 'इदं राष्ट्राय इदं न मम' मन्त्र का पाठ किया था। अतः सोते और जागते वह सदा ही मातृभूमि का हितचिन्तन करता है। ऐसे समर्पित राष्ट्र भक्त के जीवन में विलास वासना और कामोपभोग पूर्ण दिनचर्या के लिये कोई अवकाश नहीं रहता। उसे तपस्वी जीवन जीना पड़ता है। किन्तु यह तप मात्र शरीर को पीड़ित करने, पञ्चाग्नि तापने अथवा व्रत उपवास कर शरीर को सुखाने वाला नहीं है। कष्ट-सहिष्णुता, सुख-दुःख, शीत, ताप, हानि-लाभ, मानापमान जैसे द्वन्द्वों को सहन करना ही वास्तविक तप है। उसका जीवन सरल, निराडम्बर तथा सांसारिक ऐश्वर्यों के प्रदर्शन से शून्य होगा। वह विदेहराज जनक की भांति जल में रह कर भी कमलपत्र की भांति निर्लेप रहेगा। आर्यावर्त के प्राचीन राजाओं ने ऐसा ही तपस्या युक्त जीवन जिया था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तप के अनन्तर पृथिवी के धारक तत्त्वों में 'ब्रह्म' का स्थान है। संस्कृत साहित्य में ब्रह्म शब्द अनेक अर्थों का वाचक है। ब्रह्म परमात्मा, ब्राह्मण, वेद आदि विभिन्न अर्थों में आया है। किन्तु यहाँ ब्रह्म का अर्थ ब्राह्मणों में पाई जाने वाली ब्रह्म शक्ति, ज्ञान विज्ञान युक्त दृष्टि तथा त्याग, तप और संयम से व्यतीत किये जाने वाले जीवनादर्शों से लिया जाना चाहिए। इसीलिये वैदिक तथा इतर संस्कृत साहित्य में सर्वत्र आत्मिक बल के प्रतीक ब्राह्म बल का ही जय जयकार किया गया। क्षत्रिय कुल में उत्पन्न महर्षि विश्वामित्र को भी ब्राह्मण बन कर ब्रह्मर्षि पद प्राप्त करने की लालसा रही। भारत में इस प्रकार के ब्रह्मवर्चस्वी ब्राह्मणों की लम्बी परम्परा रही है। पुरातन काल के वसिष्ठ, विश्वामित्र, व्यास, जैमिनि से लेकर शंकर और दयानन्द पर्यन्त ऋषि मुनि ब्राह्म बल के प्रोज्ज्वल प्रतीक रहे हैं। ये लोग केवल धर्म, अध्यात्म और दर्शन जैसी पराविद्याओं के ही प्रस्तोता तथा प्रवक्ता नहीं थे, अपितु राष्ट्रोत्थान और राष्ट्रहित के कार्यों में भी उनका अवदान महत्त्वपूर्ण और ऐतिहासिक रहा। ज्ञान विज्ञान युक्त तथा ब्राह्मीय संस्कार सम्पन्न व्यक्ति ही राष्ट्र का आधार होता है।

सातवां और अन्तिम पृथ्वी का धारक तत्त्व यज्ञ है। यह स्पष्ट होना ही चाहिए कि भारतीय वाङ्मय में 'यज्ञ' शब्द अनेकार्थ वाची तथा बहु आयामी है। यह मात्र क्रिया बहुल अग्निहोत्रादि कर्मों का ही वाचक नहीं है। ऋषि दयानन्द ने अपनी अपूर्व आर्ष प्रज्ञा के द्वारा यज्ञ के जो विस्तृत और व्यापक अर्थ किये हैं उन्हें स्वीकार करने में किसी भी प्रबुद्ध व्यक्ति को कोई विप्रतिपत्ति नहीं रही। यज्ञ के इसी प्रकार के अनेक अर्थ दयानन्दीय वेदभाष्य में प्रदर्शित किये गये है। पं. बुद्धदेव विद्यालंकार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने शतपथ ब्राह्मण भाष्य में यज्ञ की स्वोपज्ञ व्याख्या निम्न प्रकार की है—सामुदायिक योगक्षेममुद्दिश्य समुदायांगतया क्रियमाणं कर्म यज्ञः। अर्थात् सामूहिक अथवा समष्टिगत योगक्षेम (कल्याण) को दृष्टि में रखकर समुदाय का एक अंग बनकर जो लोकोपकार के लिये किया जाने वाला कार्य होता है, वही यज्ञसंज्ञक है। अतः मंत्र में प्रयुक्त यज्ञ का अभिप्राय राष्ट्र हित के लिये किये जाने वाले उन सभी कर्मों से लेना उचित है जो देशवासियों तथा धरती के समस्त निवासियों-जड़ चेतन जगत् का हितसाधन करने वाले हों। यही यज्ञ का भाव अग्निहोत्र जैसे क्रियापरक अनुष्ठानों में भी विद्यमान है।

इस प्रकार पृथ्वी के आधारभूत सत्य से लेकर यज्ञ पर्यन्त सात तत्त्वों का संकेत करने के पश्चात् मंत्र यह स्पष्ट कर देता है कि यह पृथ्वी ही हमारे भूत और भविष्य की रक्षक और पालन-कर्त्री (पत्नी) है। इस धरती के अतीत पर तो हम गर्व करते ही हैं, हमारे भविष्य की उन्नति, प्रगति और कल्याणों का वहन करने की क्षमता भी इसी पृथ्वी में है। जब यह धरती हमारे भूत की संवाहिका तथा भविष्य की निर्धारिका है तो क्यों नहीं हम उससे यही प्रार्थना करें कि हे माता पृथ्वी, तू हमारे लिये विस्तृत लोकों का प्रसार कर। धरित्री की जनसंख्या में निरन्तर अभिवृद्धि होने पर भी इसका धरातल इतना विराट् और विशाल है कि तृण से लेकर हाथी पर्यन्त सृष्टि के संभार को वहन करने की क्षमता इसमें सदा से रही है। आज धरती के अज्ञात कोनों, अरण्य, पर्वत, गुहा कन्दरादि दुर्गम स्थानों में जाकर भी मनुष्य ने अपने आवास बनाये हैं और पृथ्वी माता ने अपने उदार अंचल तथा वात्सल्य-युक्त वक्षस्थल पर मानव संतति को सदा पुत्रवत् स्नेह का संबल दिया है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२

असंबाधं बध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु ।
नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतांनः ।।

पृथ्वी पर निवास करने वाले सभी मनुष्य किंवा किसी राष्ट्र के नागरिक एक समान नहीं होते। शरीर, मन, बुद्धि आदि के विकास की दृष्टि से उनमें भिन्नता होती है, उच्च, मध्यम और सामान्य कोटियाँ भी होती हैं। किन्तु इन सभी श्रेणी के मनुष्यों को धरती माता की गोद में रहकर विकास करने का समान अवसर मिलना चाहिए। आगे बढने और स्वयं के विकास के लिये कृतसंकल्प व्यक्ति के मार्ग में चाहे कितनी ही बाधायें क्यों न आयें वह उनसे टक्कर लेता हुआ निरन्तर आगे ही बढता है। किन्तु पृथ्वी सूक्त का यह मंत्र मानव जाति के तीन वर्गों को स्वीकार करता है जिनमें से एक समूह उन लोगों का है जो निरन्तर आगे बढते हैं, अन्य वे हैं, जो एक ही स्थान पर रहते हैं और कुछ सामान्य कोटि के लोग तो उन्नति की दौड़ में पिछड़ भी जाते हैं। इन तीन श्रेणियों के लिये उद्वतः, प्रवतः तथा समं शब्दों का प्रयोग हुआ है। इस सूत्र के एक अन्य भाष्यकार स्वामी वेदानन्द तीर्थ के अनुसार इस पृथ्वी पर ही ऊँचे, नीचे तथा समतल स्थल हैं इसलिये उपर्युक्त शब्दों का प्रयोग इन विषम स्थलों वाली धरती के लिये ही हुआ है। निश्चय ही धरती का निवासी मानव अपने मार्ग में आने वाली सभी रुकावटों को अपने पुरुषार्थ से पीछे ढकेलता है और आगे बढता है।

पृथ्वी के एक अन्य गुण की ओर मंत्र हमारा ध्यान आकृष्ट करता है। उसने इस धरती को विभिन्न प्रकार की शक्ति,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामर्थ्य और बल प्रदान करने वाली औषधियों को उत्पन्न तथा धारण करने वाली कहा। पृथ्वी को रत्नगर्भा विशेषण देने का औचित्य भी यही है कि वह अपने अन्तस्तल में यदि स्वर्ण, रजत, लोहा, तांबा, जस्ता आदि अनेक मूल्यवान् किंवा उपयोगी धातुओं को धारण करती है तो साथ ही विभिन्न लता-गुल्म, औषधि, वनस्पति आदि को जन्म देना भी उसके ही सामर्थ्य की बात है। शताब्दियों से औषधि विज्ञान तथा वनस्पति शास्त्र के विद्वान् धरती के वक्ष से निकलने वाली इन जड़ी बूटियों के गुण, प्रभाव तथा लाभ आदि का विवेचन कर मानव जीवन के हित में उनका उपयोग करते आये हैं।

ऐसी धरित्री के प्रति उस पर निवास करने वाला मनुष्य प्रार्थना करता है कि यह पृथ्वी माता उसके लिये सदा विस्तीर्ण रहे। न केवल धरती के वक्ष पर पीठ टिका कर विश्रान्ति के कुछ क्षण बिताने में ही उसे घाटा न रहे अपितु उसकी भौतिक और बौद्धिक प्रगति में भी किसी प्रकार का अवरोध न आये। एक अन्य प्रार्थना इस धरती से समृद्धि प्राप्त करने की भी है। मनुष्य की सार्वत्रिक समृद्धि में पृथ्वी का योगदान सुनिश्चित है। कृषिजन्य अन्न, वनस्पतियाँ, औषधियाँ, कन्द मूल, फल, कूप और वापियों से प्राप्त होने वाला मधुर श्रमहारी जल, विविध प्रकार से मानव के ऐश्वर्य की वृद्धि करने में सहायक धातुयें, ये सभी पृथ्वी से ही उत्पन्न होती हैं। अतः धरती से प्रथतां तथा राध्यतां की वैदिक प्रार्थना करने वाले ऋषि का यह उदात्त भाव नितान्त स्पृहणीय तथा अनुकरणीय है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३

**यस्यां समुद्र उत सिंधुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः सम्बभूवुः ।
यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमि पूर्वपेये दधातु ।।**

अथर्ववेदीय पृथ्वी सूक्त मुख्यतः माताधरित्री के नैसर्गिक वैभव का ही बखान करता है। इसके अधिकांश मंत्रों में इस धरती पर पाये जाने वाले वनों, पर्वतों, जलाशयों, नदियों तथा उनसे उत्पन्न होने वाली वनस्पति, लताओं, वृक्षों एवं पृथ्वी के गर्भ से निकलने वाले नाना धातुओं, धरातल पर विस्तीर्ण विविध वर्णा मृदाओं आदि का संश्लिष्ट वर्णन पाया जाता है। प्रस्तुत मंत्र में 'समुद्र' तथा 'सिंधु' सागर तथा नदी के वाचक हैं। कहते हैं कि पृथ्वी पर जल की मात्रा स्थल की अपेक्षा तीन चौथाई है। सागर तट पर खड़े होकर क्षितिज पर्यन्त विस्तीर्ण जलराशि को हम निहारें और उस समय हमारे मन में विस्मय, श्रद्धा तथा आतंक के जो भी भाव जागृत हों उन्हें यदि हम लिदिबद्ध कर लें तो वह एक सुन्दर काव्य बन जायगा। संस्कृत और अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य में समुद्र का अनेकत्र प्रभावशाली वर्णन मिलता है। रामचरितमानस के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास ने तो रावण के दसों मुखों से समुद्र के दस नामों का तत्काल उच्चारण करवा दिया, जब लंकाधिपति को यह सूचना मिली कि राम ने समुद्र पर पुल बांध लिया है—

**बांध्यो बारिधि नीरनिधि जलधि सिंधु वारीश ।
सत्य तोयनिधि कम्पति उदधि पयोधि नदीश ।।**

समुद्रों के अतिरिक्त अनेक नदियाँ भी अपने स्वास्थ्यवर्धक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जल को निरन्तर प्रवाहित कर इस धरती को स्वर्ग बनाती रहती हैं। ये जल के स्रोत धराधाम के निवासी समस्त प्राणिजगत् के जीवन के आधार हैं। समुद्र और नदियों के अतिरिक्त भी जल-स्रोत पृथ्वी पर पाये जाते है। इनमें कूप, तड़ाग, वापी आदि यदि मनुष्य निर्मित हैं तो स्रोत, निर्झर तथा झीलें प्राकृतिक भी हैं। इन सभी जल स्रोतों से मनुष्य अन्न प्राप्त करता है तथा अपनी कृषि को सघन तथा उपजाऊ बनाता है। वेदों में कृषि कर्म की चर्चा अनेक स्थानों पर अत्यन्त श्लाघाभाव से की गई है। कृषि-कर्म का विवेचन करने वाले सूक्त के सूक्त संहिताओं में आये हैं।

मंत्र में प्रयुक्त 'कृष्टयः' कृषि तथा मनुष्य दोनों अर्थों में आता है। निघण्टु के अनुसार कृष्टयः मनुष्य नाम में पठित है। तब इस मंत्रान्श का हम यह भाव भी ले सकते हैं कि धरती पर सारे मनुष्य परस्पर मिल कर रहते हैं। इसी धरती पर निवास करने वाला समस्त प्राणि जगत् अपनी चेष्टाओं के द्वारा निरन्तर गतिशील है। निश्चय ही धरती से उत्पन्न होने वाले अन्न, फल-फूल, जल आदि पदार्थ ही प्राणियों में गति का संचार करते हैं। यदि धरती से उत्पन्न ये प्राणदायक वस्तुएँ हमें प्राप्त न हों तो हमारा जीवनधारण एक क्षण के लिये भी असम्भव हो जायगा।

ऐसी सुखद तथा जीवन में सर्वत्र योग क्षेम की पावन धारा प्रवाहित करने वाली माता धरित्री से हम यह आशा करते हैं कि वह हमारे पूर्वजों को प्राप्त होने वाली अन्न, जल आदि वस्तुएँ हमें भी प्राप्त कराये।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४

यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः सम्बभूवुः।
या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु ।।

पृथ्वी की सीमा चारों दिशाओं में विस्तीर्ण है। इस प्रकार इस धरती की विशालता का अनुमान होता है। चारों दिशाओं का विस्तार धरती पर रहने वाले मनुष्य के लिये यह भी संकेत देता है कि वह निरन्तर उन्नति और प्रगति के मार्ग पर आगे बढ़ता रहे। उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम, सर्वत्र वह जा सकता है तथा अपने विकासतथा अभ्युदय के लिये किसी भी पथ का अनुसरण कर सकता है। जिन राष्ट्रों के नाविकों और अन्य देशों तक पर्यटन एवं व्यापार के लिये जाने वाले साहसो व्यक्तियों ने समुद्र की छाती को चीरकर अपने व्यापार-व्यवसाय को बढाया, अन्य देशों पर विजय प्राप्त की, साम्राज्य स्थापित किये तथा अपनी सभ्यता, धर्म एवं संस्कृति का उन विजित देशों में प्रचार किया, उनके लिये किसी भी दिशा में जाने के लिये कोई व्यवधान नहीं था। कोलम्बस भारत की तलाश में निकला किन्तु अमेरिका जा पहुंचा। पुर्तगाल का साहसी नाविक वास्को-डिगामा सम्पूर्ण एशिया महाद्वीप का चक्कर लगाकर भारत के दक्षिणी तट पर आ गया। इन लागों को न तो दिशाशूल ने कष्ट दिया और न कभी इन्होंने इन यात्राओं के लिये मुहुर्त ही निकलवाये। इसके विपरीत भारत के मध्यकालीन धर्मशास्त्रों में समुद्र यात्रा को कलियुग में वर्ज्य मान लिया गया और भारत-वासी कूप मण्डूक बन कर बैठ गये।

इस मंत्र में 'यस्यामन्नं कृष्टयः सम्बभूवुः' की आवृत्ति गत

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंत्र से हुई है। यही धरती हमें अन्न प्रदान करती है और इसी में कृषि कर्म किया जाता है। यह धरती ही सम्पूर्ण जगत् के जीवों का क्रीड़ास्थल है। सभी प्राणी इस पर निवास कर अपनी गति-विधि और प्रवृत्ति के द्वारा प्राण धारण करते हैं। यदि धरती माता अन्न, जल, फल, फूल वनस्पति आदि का देना बंद कर दे तो सारी प्राणी सृष्टि का विनाश हो जाएगा। वह अनुर्वरा, बंध्या धरती शुष्क और शून्य रह जायेगी। किन्तु पृथ्वी का प्राणी मात्र पर यह उपकार है कि वह इनको प्राण धारण कराती है।

पृथ्वी माता के हम उपासक उससे क्या मांगे! हमारी दो कामनाएँ हैं जो धरती पूरी करे। प्रथम वह हमें गौ आदि उत्तम पशु उपलब्ध कराती रहे। वेद में गौ को उन समग्र पशुओं का प्रतीक माना गया है जिनका अस्तित्व मनुष्य के लिये अत्यन्त लाभकारी है। वेदादि शास्त्रों में गौ महिमा अनेकत्र वर्णित है। कहीं उसे रुद्रों की माता, आदित्यों की भगिनी, वसुओं की पुत्री तथा अमृत का केन्द्र बिन्दु कहा तो अन्यत्र उसे 'अघ्न्या' कह कर किसी भी प्रकार से उसको क्षति न पहुंचाने का आदेश दिया। गौ की कामना के साथ अन्न प्राप्त कराने के लिये भी हमारी प्रार्थना है। शास्त्रों में अन्न की महिमा सर्वत्र वर्णित है। उपनि-षद्कार अन्न की निंदा न करने का आदेश देते हैं। गीता के उप-देशक कृष्ण अन्न को प्राणियों का उत्पादक मानते हैं। अग्निहोत्रादि कृत्यों में भी अन्न की आवश्यकता होती है। वलिवैश्वदेव और अतिथि यज्ञ भी अन्न से ही सम्पन्न होते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५

यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन् ।
गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु ।।

धरती माता की महिमा का गान करने वाला अथर्ववेद का यह सूक्त एक के बाद एक मातृभूमि के प्रति प्रशंसापूर्ण उद्‌गार व्यक्त करता है। मनुष्य को अपने पूर्वजों से सदा से प्रेरणा मिलती रही है। वर्तमान के प्रति अपने कर्तव्यों का निर्धारण करते समय भी हम अपने उन विगत पुरुषाओं के क्रियाकलाप का चिन्तन अवश्य करते हैं और यह समझने का प्रयास करते हैं कि हमारे उन पूर्वजों, पूर्वजनों, पितरों ने ऐसी ही परिस्थितियों में क्या कुछ किया था। यह धरती ही थी जिस पर हमारे पूर्वज अपने दिव्य कर्मों का प्रसार करते हुए विचरण करते रहे। ऐति-हासिक स्थलों तथा महापुरुषों के पदारोपित स्थानों का भ्रमण करते हुए आज भी हम उन गौरवशाली पूर्वजों का स्मरण आदर के साथ करते हैं। अयोध्या, मथुरा, पाटलिपुत्र, प्रयाग, काशी, माहिष्मती, उज्जयिनी, काञ्ची, टंकारा आदि नगरों में जाकर हम अतीत काल के उन पूर्वजनों को पुनः अपने कल्पना के नेत्रों से देखने लगते हैं, जिन्होंने तत्-तत् स्थानों पर रह कर विभिन्न पुरुषार्थ एवं पराक्रम के कार्य किये।

इसी धरती पर देवताओं और असुरों का भीषण संग्राम हुआ, जिसमें देवताओं ने असुरों को पराजित किया। देवासुर संग्राम की कथायें भारतीय वाङ्मय में यत्र-तत्र बिखरी पड़ी हैं। उपनिषदादि ग्रन्थों में दैवी और आसुरी प्रवृत्तियों के संघर्ष को देवासुर संग्राम कहा है, किन्तु मानव मात्र के प्रति उपकार, दया

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और करुणा की भावना रखने वाले लोगों तथा दुष्ट, क्रूर और तामसी प्रकृति वाले लोगों के मध्य भी घोर युद्ध होते रहे हैं। इस प्रकार सत्वगुण सम्पन्न देवों और आसुरी प्रवृत्ति के राक्षसों के बीच वास्तविक युद्ध भी सदा ही होते आये हैं। यदि भारतीय इतिहास से ही उदाहरण दिये जाये तो राम-रावण युद्ध, कौरव-पाण्डव युद्ध, पोरस-सिकन्दर संग्राम, पृथ्वीराज-मौहम्मद गौरी का युद्ध, महाराणा प्रताप-सम्राट अकबर के बीच का युद्ध, शिवाजी तथा औरंगजेब की लड़ाई, अंग्रेजों के खिलाफ लड़ा गया भारत का स्वाधीनता संग्राम, इन सभी युद्धों को देवासुर संग्राम की संज्ञा दी जा सकती है। धरती का गौरव उन युद्धों के कारण भी हैं जिनमें देवशक्ति ने असुरशक्ति को पराजित किया। जिस प्रकार यूनान में धर्मोपली की युद्धभूमि एक ऐतिहासिक स्थान है, उसी प्रकार भारत में कुरुक्षेत्र, पानीपत, हल्दीघाटी आदि स्थानों को ख्याति मिली है।

यह धरती ही गाय, घोड़ा जैसे उपयोगी पशुओं तथा पक्षियों के आश्रय का स्थान है। आर्य संस्कृति में गाय की ही भांति अश्व को भी प्रतिष्ठा प्राप्त रही है। अत्यधिक गतिवान् तथा सुन्दर होने के कारण अश्व का महत्त्व प्रायः सर्वत्र वर्णित हुआ है। आलोच्य मंत्र की यह विशेषता है, और यह वैशिष्ट्य इस सूक्त के प्रत्येक मंत्र में दिखाई देता है कि धरती को केवल मानव का ही आश्रय स्थान नहीं माना गया, अपितु गौ आदि इतर प्राणियों, अन्य पशु-पक्षियों, यहाँ तक कि पर्वत, नदी, समुद्र, मिट्टी, धातु आदि जड़ पदार्थों का भी आधार स्थल कहा गया है।

मन्त्रान्त में इस धरती से भग तथा वर्च की कामना की गई

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। भग शब्द वेदों तथा इतर संस्कृत साहित्य में ऐश्वर्य के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। ऐश्वर्य भी भौतिक तथा आध्यात्मिक दो प्रकार का है। राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर आदि असाधारण-गुण सम्पन्न महापुरुष इसी प्रकार के ऐश्वर्यों से मण्डित होने के कारण 'भगवान्' कहलाये। किन्तु कोशकार ने भग के कुछ अन्य अर्थ भी किये हैं—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भगइतीरिणा ।।

अर्थात् समग्र ऐश्वर्य (भौतिक तथा मानसिक, बौद्धिक एवं आत्मिक सम्पदा युक्त होना) धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य इन सभी को भग कहा है तथा इन गुण-लक्षणों से युक्त पुरुष 'भगवान्' संज्ञा का अधिकारी है।

ऐश्वर्य सम्पन्न बनने के साथ ही हम वर्चस्वी भी बनें। वेद में परमात्मा को 'वर्चोदा'—वर्चस् का देने वाला कहा है तथा उससे इसी वर्च की कामना की गई है। यजुर्वेद के 'आब्रह्मन्' इस प्रसिद्ध मंत्र में भी यह प्रार्थना की गई है कि हमारे राष्ट्र में ब्रह्मवर्चस को धारण करने वाले ब्राह्मण उत्पन्न हों। यह भग और वर्चस् हमें माता धरित्री से ही प्राप्त होता है। प्रत्यक्षतया न सही, किन्तु धरती से उत्पन्न पदार्थ तथा उनका समुचित उपयोग मनुष्य को निश्चय ही ऐश्वर्यवान्, प्रतिभाशाली, तेजस्वी तथा शक्ति का पुंज बना देता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६

**विश्वम्भरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी ।
वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु ।।**

माता को हम किन-किन नामों से पुकारते हैं ? संस्कृत में माता, अम्बा, जननी आदि विशेषण हैं । लोक में हम माता को मां, अम्मा, आई आदि कह कर पुकारते हैं । पाश्चात्य भाव धारा में दीक्षित होने वाली आज की पीढी अंग्रेजी अनुकरण कर माता को ममी या मामा कहती है । मुसलमान लोग अम्मीजान कह कर जन्मदायिनी के प्रति अतिरिक्त स्नेह दिखलाते हैं । इसी प्रकार मां धरित्री को भी हम उसके पुत्र, उसका वात्सल्य प्राप्त करने वाले नाना नामों से पुकारते हैं । यह विश्वम्भरा है—सबका भरण-पोषण करती है । कीड़ी से लेकर कुंजर पर्यन्त प्राणि-सृष्टि का पोषण धरती से उत्पन्न अन्न, जल, कन्दमूल, फल आदि से होता है । इस पोषण में माता का अपनी किसी भी सन्तान के प्रति कोई पक्षपात नहीं है । सभी प्राणी अपनी-अपनी इच्छा और प्रवृत्ति के अनुसार धरती माता से अपने भरण-पोषण की सामग्री प्राप्त करते हैं ।

इस पृथ्वी को हम वसुधानी क्यों न कहें ? यह नाना प्रकार के ऐश्वर्यों-वसुओं को अपने भीतर धारण करती है । स्वर्ण, रजत ही नहीं, लोहा, कोयला, तांबा, जस्ता जैसी अनेक धातुएँ धरती के गर्भ में छिपी पड़ी हैं और सहस्राब्दियों से इनका खनन होते रहने पर भी ऐश्वर्य का यह भण्डार अभी समाप्त नहीं हुआ है । धरती का एक नाम 'प्रतिष्ठा' भी है क्योंकि यह हम सबका आधार है । यदि आज मनुष्य को अपने निवास के लिये धरती

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर स्थान न मिले तो उसके अस्तित्व विनाश की ही सम्भावना उत्पन्न हो जायगी। जीवित रहते तो संसार के प्राणी धरती को अपना आधार बनाते ही हैं, मरने पर मनुष्य की अन्त्येष्टि भी धरती पर ही होती है। आर्यों के मृतक शरीर धरती पर बनी वेदियों में ही अग्नि को समर्पित किये जाते हैं। सामी जातियों के मुर्दों को भी धरती में ही गाडा जाता है। यहाँ तक कि पशु-पक्षी, कीट-पतंग तक के शरीर मृत होकर पञ्चमहाभूतों में विलीन होते हैं और उनके अन्तिम अवशेष मां धरित्री के गर्भ में ही विलीन होते हैं। किन्तु धरती केवल इसीलिये 'प्रतिष्ठा' नाम को धारण करने वाली नहीं है कि वह हम सबका आधार है। उसे 'प्रतिष्ठा' इसलिये भी कहते हैं क्योंकि उस पर रहने में हम लोगों की सचमुच प्रतिष्ठा (सम्मान-आदर) भी है। जिनका अपना कोई देश नहीं होता वे बेचारे खानाबदोशों की भांति जगह-जगह भटकते हैं, दुत्कारे जाते हैं।

यह धरती यदि वसुधानी है तो हिरण्यवक्षा भी है। समस्त चमकीले और रमणीय पदार्थों की 'हिरण्य' संज्ञा है। 'हिरण्य' सोने का वाचक तो है ही, प्रकाशमान् पदार्थों का भी द्योतक है। ऋषि दयानन्द ने 'हिरण्यगर्भ' को परमात्मा का वाचक बताते हुए उसका इस प्रकार अर्थ किया—'स्वयं प्रकाशस्वरूप और सूर्य-चन्द्रादि अन्य प्रकाश करने वाले पदार्थों का धारणकर्त्ता'। इसी विस्तृत अर्थ में 'हिरण्यवक्षा' को भी लेना चाहिए। यही धरती समस्त चराचर जगत् को अपने भीतर बसाने वाली तथा उसे सुरक्षा प्रदान करने वाली है। साधारण तृण से लेकर चेतना सम्पन्न मनुष्य पर्यन्त सृष्टि का निवास धरती पर ही है।

यह धरती माता प्रबल वैश्वानर अग्नि को अपने भीतर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारण किये हुए है। यों तो धरती की ऊष्मा को जानना और अनुभव करना कठिन नहीं है। धरती पर गड्ढा खोदने और मिट्टी निकालने के पश्चात् यदि हम उस गह्वर के भीतर हाथ डालें तो वहाँ धरती का तापमान हमें धरातल के तापमान से अधिक लगेगा। इसी ऊष्मा का कष्टदायक और त्रासोत्पादक अनुभव तो तव होता है जब कहीं पर ज्वालामुखी फूट पड़ती है और पृथ्वी के गर्भ का लावा जलती चट्टानों, टूटते प्रस्तर खण्डों और ज्वलनशील लपटों का रूप लेकर धरती पर फैलने लगता है। इस प्रकार सर्वत्र व्याप्त वैश्वानर अग्नि को पृथ्वी द्वारा स्वगर्भ में धारण करने का वेद का यह कथन यथार्थ ही है।

इस वैश्वानर अग्नि की एक विधायक भूमिका भी है। भूमि के ताप से ही अन्न, वनस्पति, औषधि, लता वीरुध आदि परिपक्व होते तथा मनुष्य के काम में आने लायक होते हैं। यदि धरती की यह ऊष्मा सर्वथा समाप्त हो जाये तो यह भूगोल बर्फ की भांति शीतल हो जायेगा। तब उस पर प्राणियों का जीवन धारण सर्वथा असम्भव हो जायगा। किन्तु वैश्वानर अग्नि भौतिक अग्नि से भी कुछ अधिक है। मनुष्य की संकल्पाग्नि को भी वैश्वानर अग्नि कहा जा सकता है। संकल्पशील मनुष्यों का जीवन किसी महत् उद्देश्य की पूर्ति के लिये होता है। उनके जीवन में आहार, निद्रा, भय और सन्तानोत्पादन आदि नैसर्गिक आवेगों की पूर्ति के अतिरिक्त भी कुछ अन्य श्रेष्ठ, श्रेयस्कर लोक-हित का कार्य करने की प्रवृत्ति और इच्छा होती है। ऐसे महान् उद्देश्यों को पूरा करने वाले मनुष्यों और राष्ट्रों से युक्त इस धरती को वैश्वानर अग्नि को धारण करने वाली कहना सर्वथा उपयुक्त है।

मंत्र में पृथ्वी को एक अन्य विशेषण 'इन्द्र ऋषभा' दिया

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया है। वैदिक ग्रन्थों में इन्द्र के परमात्मा, आत्मा, सम्राट्, सूर्य आदि नाना अर्थ मिलते हैं। 'ऋषभ' श्रेष्ठ का वाचक है इसीलिये राजा को पुरुषर्षभ, नरर्षभ आदि नामों से पुकारा जाता है। धरती के प्रसंग में इन्द्र ऋषभा का अर्थ हम लेंगे—वह पृथ्वी जिसका अधिपति-सम्राट् इन्द्र अर्थात् श्रेष्ठ राजा है। योग्य प्रजापालक तथा न्यायविद् सम्राट् ही 'इन्द्र' पद का अधिकारी है और ऐसे ही शासक को प्राप्त कर धरती भी कृतार्थ होती है।

गत मंत्र में धरती से भग तथा वर्च देने की प्रार्थना की, तो इस मंत्र में उससे द्रविण-धन देने की याचना की। द्रविण स्वर्ण, रजत, मुक्ता मणि आदि बहुमूल्य धनों का वाचक है तो वह बल का भी अर्थ रखता है। इस धरती में इसके अपने निवासियों को धन, धान्य, बल, ऐश्वर्य सभी प्रकार के द्रविणों से सम्पन्न करने की शक्ति है। परन्तु धनैश्वर्यों का स्वामी बनने के लिये भी मनुष्य को पुरुषार्थ करना होगा। पृथ्वी का नानाविध दोहन कर तथा उससे प्राप्त होने वाले भौतिक संसाधनों का पूरा लाभ लेकर ही वह द्रविणशाली बन सकता है।

७

यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम्।
सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा॥

पृथ्वी की रक्षा कौन करते हैं? विदेशी आक्रमणकारियों, प्रजा को पीड़ित करने वाले दस्युओं, आततायियों तथा इसी कोटि के लोगों से राष्ट्र के सतत रक्षण की आवश्यकता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्तगत इस मंत्र की धारणा है कि वे देव ही हैं जो प्रमाद शून्य, आलस्य रहित तथा सतत जागरूक होकर प्रजा की रक्षा करते हैं। इस प्रकार देव का अर्थ राष्ट्र रक्षक शासकगण, सेनापति के अधीन् राष्ट्र की सीमाओं की रक्षा में तत्पर सैनिक तथा सामान्य नागरिकों से भी लिया जा सकता है, जिन पर राष्ट्र की सुरक्षा का दायित्व है। इस विस्तृत और सुख्यात मातृभूमि की रक्षा के लिये रक्षक वर्ग का प्रमाद रहित आचरण आवश्यक है। 'अस्वप्न' और 'अप्रमाद' इन रक्षकों की मौलिक वृत्तियाँ हैं। वे रक्षा का कर्त्तव्य निभाते समय न तो सोते हैं और न गफलत में पड़े रहते हैं। ऐसे ही दिव्य गुण, कर्म वालों को पृथ्वी की रक्षा का काम सौंपना चाहिए क्योंकि यथार्थ में वे ही देव संज्ञा के अधिकारी हैं।

देवजनों से रक्षित राष्ट्र ही अपने वासी नागरिकों को नाना दिव्य और मधुर पदार्थों को देने में समर्थ होता है। इसी भाव को दृष्टि में रख कर मंत्र का द्वितीय पाद कहता है कि देवरक्षित यह धरती हमारे लिये प्रिय मधु का दोहन करे। मधु केवल मीठे शहद का ही वाचक नहीं है अपितु यह उन सभी मधुर पदार्थों का प्रतीक है जो हमारे जीवन में मधुरता भरते हैं, उसे सरस बनाते हैं तथा जिनके द्वारा हमारा जीवन सुख, मंगल और कल्याण से परिपूर्ण होता है। वेद में 'मधु' का अनेकत्र वर्णन मिलता है। यजुर्वेद के १३ वें अध्याय के मंत्र २७, २८, २९ इस मधु की चर्चा करते हैं।

मधुवाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः।
माध्वीर्नः सन्त्वोषधिः ॥१३/२७

वेद के कवि ऋषि की कामना है कि हमारे लिये वायु

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मधुरता से बहे, नदियाँ मधुर जल प्रवाहित करें तथा औषधियाँ भी मधुर रस से परिपूर्ण हों।

मधुनक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिव रजः।
मधुद्यौरस्तु नः पिता ॥१३।२८

हमारा रात्रि काल मधुर हो तथा प्रातःकालीन उषा काल भी मधुरता युक्त हो। पृथ्वी तथा उसके कण माधुर्य से पूर्ण हों और पिता तुल्य सुखों का आधार द्यौ लोक भी मधुरता की वर्षा करे।

मधुमान्नो वनस्पति मधुमां अस्तु सूर्यः।
माध्वीर्गावो भवन्तु नः॥ १३।२८

अन्न और वनस्पतियाँ मधुर हों। सूर्य चाहे कितना ही प्रचण्ड तथा तापदायक क्यों हों किन्तु वह भी हमारे लिये मधु तुल्य सुखद ही हों। गौवें भी हमारे लिये मधुर दुग्ध की धारा बहायें।

उपर्युक्त मंत्रों में कथित सभी मधुर वस्तुओं का मूल उद्गम धरती ही है, इसलिये अथर्ववेद के उक्त मंत्र के दृष्टा ऋषि ने धरित्री से ही इस मधु का दोहन करने के लिये कहा। उसकी एक प्रार्थना यह भी है कि यह पृथ्वी हमें तेजस्वी बनाये तथा हमारे जीवन को वर्चस से सिञ्चित कर दे। वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे वेहि। वर्चस देने वाला यदि अग्नि (परमात्मा) है तो माता पृथ्वी भी हमें वर्चस्वी बनाती है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८

यार्णवेऽधि सलिलमग्र आसीद्यां मायाभिरन्वचरन्मनीषिणः ।
यस्या हृदयं परमे व्योमन्त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः ।
सा नो भूमिस्त्विषिं बलं दधातूत्तमे ।।

इस मंत्र में प्रथम तो एक भौगोलिक तथ्य की ओर संकेत किया गया है। सृष्टि विद्या को जानने वाले विद्वानों का कहना है कि पृथ्वी की आदिम अवस्था में इसका सम्पूर्ण धरातल जल से परिपूर्ण था। धीरे-धीरे जल सिकुड़ता गया और सूखी तथा सख्त धरती का तल उभरता गया। इसे ही मंत्र ने इस रूप में प्रस्तुत किया है कि यह पृथ्वी पहले समुद्र में थी, उसके पश्चात् उसका वह धरातल स्पष्ट होकर प्राणिसृष्टि के निवास के योग्य बना। आज भी धरती पर समुद्र अधिक परिमाण में हैं जबकि बसावट वाला भाग उसके अनुपात में कम है।

जब धरती पर मानवी सृष्टि आरम्भ हुई तो सभ्यता का भी विकास होने लगा। यहाँ सभ्यता के विकास का अर्थ वह नहीं है जो पश्चिम के चार्ल्स डार्विन आदि विकासवादियों ने लिया है। उनका विचार वैदिक सृष्टि रचना से नितान्त भिन्न है। वे तो आदि मानव के पृथ्वी पर अवतरित होने के पहले उसको वानर आदि योनियों में से गुज़रने की बात कहते हैं। हमारे विचारानुसार सृष्टि के आरम्भ में जब सृष्टिकर्त्ता द्वारा वैदिक ज्ञान मानव को प्रदान किया गया तो उसी के आधार पर मनुष्य के वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय जीवन के विकास की प्रक्रिया निर्धारित की गई।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदों में जहाँ मनुष्य के वैयक्तिक इतिकर्त्तव्यों का विधान मिलता है वहाँ परिवार में माता, पिता, सन्तान, भाई-बहिन, पति-पत्नी, भावज-ननद, देवर-भाभी तक के सम्बन्धों के सौहार्द तथा सौमनस्य पूर्ण निर्वाह का भी वर्णन है। सामाजिक जीवन के सूत्रों को ऋग्वेदीय संज्ञान सूक्त में देखा जा सकता है और राष्ट्र के प्रति नागरिक के कर्त्तव्यों का भी भूरिशः उल्लेख मिलता है। इस सांस्कृतिक और सभ्याचारिक विकास में मनीषी श्रेणी के लोगों का सर्वाधिक योगदान रहा है। उन्होंने अपनी माया-प्रज्ञा के द्वारा इस धरती की बहुविध सेवा की है। वे आज भी राष्ट्र और विश्व मानवता की सेवा में अपनी धारणावती बुद्धि के द्वारा लगे हुए हैं। ध्यातव्य है कि मंत्र में जिस 'माया' शब्द का प्रयोग हुआ है वह अवान्तर कालीन शाङ्करदर्शन में प्रयुक्त 'माया' का अर्थ नहीं देता। अद्वैतवादी दार्शनिकों ने मिथ्या, कल्पित, स्वप्नतुल्य अतथ्य आदि अर्थों में इस शब्द का प्रयोग किया और संसार को माया-मिथ्या कहा। वैदिक साहित्य में माया का अर्थ प्रज्ञा ही लिया गया है।

मंत्र की द्वितीय पंक्ति में पृथ्वी के हृदय को आकाश के तुल्य व्यापक परमात्मा से आवृत्त बताया गया है। प्रश्न यह है कि पृथ्वी का हृदय क्या होता है? यदि धरती के वक्ष को विदीर्ण किया जावे तो उसमें मिट्टी, पत्थर, कंकड़, चूना आदि जड़ पदार्थ ही निकलेंगे, फिर धरती का हृदय क्या है जो परमात्मा में व्यापक है, साथ ही परमात्मा ने भी उसे चारों ओर से आवृत्त भी कर रक्खा है। निश्चय ही अथर्ववेद के इस सूक्त में धरती का जो वर्णन आया है वह उसके भौतिक, प्राकृतिक तथा जड़ रूप का तो ही है, साथ ही इस पर निवास करने वाले मानवों की सभ्यता, संस्कृति, भाषा, धर्म, चिन्तन आदि उसके सम्पूर्ण सामा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिक और बौद्धिक ऊहापोहों को भी यहाँ धरती का हृदय कहा गया है। इन्हीं धरती पुत्रों का हृदय सत्य के आचरण को श्रेष्ठ मानता है और जहाँ सत्य है वहाँ निश्चय ही परमाकाश के तुल्य व्यापक परमेश्वर का निवास है। अतः वेद का यह कथन नितान्त औचित्यपूर्ण है कि धरती का हृदय सत्य के माध्यम से परमात्मा से जुड़ा है। सत्य की ही भांति देशनिवासियों में आस्तिकता का भाव भी वांछनीय माना गया है। ईश्वर-विश्वास के बल पर आदमी बड़े से बड़े पुरुषार्थ को प्राप्त कर सकता है।

मंत्र की तीसरी पंक्ति में उस भूमि से प्रार्थना की गई है कि वह हमारे राष्ट्र में उद्दीप्त तेज तथा बल को स्थापित करे। प्रथम बार इसी मंत्र में 'राष्ट्र' पद का प्रयोग हुआ। पृथ्वी पर भिन्न-भिन्न राष्ट्र स्थापित हुये। इन राष्ट्रों के निवासियों में जहाँ शारीरिक बल का होना आवश्यक है, वहाँ उनका आत्मिक और बौद्धिक बल भी उत्कृष्ट होना चाहिए। यह आत्मिक बल ही 'त्विषि' (अर्थात् उद्दीप्त तेज) शब्द से व्यक्त हुआ है। जब देश-वासियों में इस प्रकार के उत्कृष्ट, आत्मिक, बौद्धिक तथा शारी-रिक बल का संचार होगा तो राष्ट्र की अभिवृद्धि और सर्वांगीण उन्नति में किसी प्रकार का संदेह नहीं रहेगा। ❁

९

यस्यामापः परिचरा समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति ।
सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा ।।

जल को ही जीवन कहा गया है। इस धरती पर अन्न

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और प्राणवायु की भांति जल का अस्तित्व भी प्राणिजगत् क लिये अनिवार्य है। परमात्मा का हम सबके लिये अमर वरदान है कि समय-समय पर वर्षा होती है और प्राणिजगत् की ही भांति वनस्पति जगत् को भी हरा-भरा तथा प्रफुल्लित बनाती है। धरती पर पाये जाने वाले जल के स्रोत कितने और कितने प्रकार के हैं ? क्या इस सब का हिसाब लगाना सम्भव है। हमने महासागरों की ता गणाना कर ली, किन्तु धरती की छाती पर बहने वाली नदियों, विशाल झीलों, मनुष्य निर्मित कूप, तालाब, वापियों तथा पर्वतीय उपत्यकाओं से झरने वाले निर्झर, उधर घरती के वक्ष को चीरकर प्रकट होने वाले शीतल एवं उष्ण जल के विविध स्रोत। इन सभी जलाशयों और जल की धाराओं को मंत्र में एक ही शब्द 'आपः' कहकर सम्बोधित किया गया है। ये सभी जल स्रोत और जल धारायें बिना किसी प्रमाद के रात-दिन, बिना एक क्षण का विश्राम लिये, समान रूप से धरती के आंचल को भिगोती हुई वह रही हैं।

राजाओं और सम्राट्ों, यहाँ तक कि श्रेष्ठि सामन्तों के यहाँ जल लाने वाले परिचर सदा मौजूद रहते हैं। धरती की सेवा में भी ये नद - नदी, जलस्रोत और निर्झर सदा सेवक-परिचर की भांति हाथ बांधे खड़े रहते हैं और यथावश्यकता जल की पूर्ति करते हैं। जल से ही अन्न, औषधि और वनस्पतियों का पकाव होता है, उनमें माधुर्यादि गुणों का संचार होता है और इन भक्ष्य पदार्थों का सेवन कर गाय आदि दुग्ध देने वाले पशु अपने थनों से दूध की धाराओं का क्षरण करते हैं। प्रकारान्तर से यह धरती ही अन्न, दुग्ध तथा अन्य रसवाले पदार्थों को प्राणीहित के लिये प्रवाहित करती है। इसी अभिप्राय से धरती को भूरि धारा-जल दुग्धादि की अनेक धाराओं वाली कहा है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस भूरि धारा पृथ्वी माता से उपासक गण प्रथम तो पय की याचना करते हैं। संस्कृत में 'पय' जल तथा दूध दोनों का ही वाचक है। हमारे देश में दुग्ध तथा जल का कोई अभाव न रहे। 'निकामे निकामे नः पर्जन्योऽभिवर्षतु' की वैदिक प्रार्थना का भी यही भाव है कि समय-समय पर इच्छित जल बादलों से बरसे। वृष्टि पर ही अन्नादि पदार्थों की उपलब्धि निर्भर होती है और इन्हीं तृण, अन्न आदि को खाकर गौवें भी दुग्धवती होती हैं। अतः धरती माता से जल और दूध की प्राप्ति सुनिश्चित होती है। स्वस्थ और सबल शरीर के लिये जब प्रचुर मात्रा में जल तथा दुग्ध प्राप्त होगा तो निश्चय ही इनका सेवन करने वाले व्यक्ति भी मेधावी, प्रज्ञावान् तथा वर्चस्वी होंगे। इस प्रकार धरती पुत्रों में वर्चस का सिंचन करने में भी पृथ्वी माता का ही उत्कृष्ट योगदान होता है। मंत्रों के इस क्रम में प्रथम तो मातृ-भूमि के ऐश्वर्य, गौरव तथा उसकी महिमा का बखान रहता है और मन्त्रान्त में उससे उपासक जो कुछ चाहता है, याचना करता है, उसे भी उल्लिखित किया जाता है।

१०

याम॒श्विना॒ वमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे ।
इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः ।
सा नो भूमिर्विसृजतां माता पुत्राय मे पयः ॥

वेदों में विभिन्न देवताओं को मंत्र का मुख्य विषय मान कर उनकी स्तुति (विशिष्ट गुणों का कीर्तन) की गई है। यहाँ पृथ्वी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के संदर्भ में अश्विनौ, विष्णु तथा शचीपति इन्द्र-इन तीन देवताओं का उल्लेख हुआ है। अश्विनौ देव युग्म हैं जिनके प्रकरणानुसार भिन्न-भिन्न अर्थ किये जाते हैं। वहुत बाद में, पौराणिक काल में अश्विनीकुमारों के रूप में देवताओं के वैद्य द्वय की कल्पना की गई। प्रस्तुत मंत्र में कहा गया है कि अश्विनौ देवता इस धरती को नापते हैं तथा इसका निर्माण करते हैं। नापना गति अर्थ में भी आता है। अश्विन् देवता वे हैं जो धरती के एक छोर से, राष्ट्र के एक कोने से दूसरे कोने तक जाकर संचार, यातायात आदि की व्यवस्थायें करते हैं। इस प्रकार आशु गति से समस्त धरती के ओर छोर तक विचरण करने वाले ये अश्विनौ धरती के चप्पे-चप्पे को पहचानते हैं, मानो धरती को उन्होंने नाप रक्खा है।

ऋषि दयानन्द ने अपने वेद भाष्य में अश्विनौ के राजा प्रजा, पति-पत्नी, अध्यापक - उपदेशक आदि अन्य अर्थ भी किये हैं। वस्तुतः धरती पर विचरण करने वाले तथा स्वकर्त्तव्यों के द्वारा इस पृथ्वी का सदुपयोग लेने वाले सभी युग्म अश्विनौ पद वाचक हैं। अतः इन सभी युग्मों से सूचित व्यक्ति ही अश्विनौ के रूप में धरती पर विचरण करते हुए स्वकर्त्तव्य पालन में सतत् निरत रहते हैं।

अश्विनौ के पश्चात् मंत्र में विष्णु का उल्लेख हुआ और कहा गया कि इसी धरती पर विष्णु भी विचरण करते हैं। वेदों में विष्णु देवतापरक सूक्त बहुत अधिक नहीं हैं, परन्तु जिन मंत्रों में विष्णु का उल्लेख हुआ, वहाँ उसके विचक्रमण-विचरण अथवा भ्रमण की तो चर्चा आई ही है। निरुक्त दर्शित वेदार्थ प्रक्रिया का अनुसरण करने से विष्णु के अनेक अर्थ होंगे। स्वामी दयानन्द

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने ईश्वर प्रकरण में 'वेवेष्टि-व्याप्नोतीति विष्णुः' कह कर सर्व-व्यापक परमात्मा को विष्णु कहा है। किन्तु राष्ट्र में सर्वत्र विचरण करने वाले तथा विविध शासकीय व्यवहारों में व्याप्त रहने वाले राष्ट्र के प्रधानमंत्री की भी विष्णु संज्ञा है। अतः इस प्रसंग में राष्ट्र के प्रधानमंत्री विष्णु का सर्वत्र विचरण कर शासन का सूत्र संचालन करने वाले अधिकारी वर्ग तथा प्रजा-वर्ग पर निगाह रखना ही उसका प्रमुख कार्य बताया गया है।

पुनः कहा गया कि शचीपति इन्द्र ने स्वयं के लिये इस धरती को शत्रुरहित बताया है। पौराणिक देवगाथावाद में जब वैदिक देवताओं को मानवो रूप दिया गया और उनके आकार प्रकार, मनुष्य तुल्य व्यवहार और आचरण आदि की कल्पना की गई, उस समय शची को इन्द्र की पत्नी के रूप में स्वीकार किया गया। किन्तु वैदिक शब्दों के कोश निघण्टु में शची के अर्थ वाणी, कर्म और प्रज्ञा किये गये हैं। इन्द्र भी परमात्मा, जीवात्मा, समाट् आदि अनेक अर्थों में आता है। यहाँ अधिराष्ट्रपरक अर्थ करने पर शचीपति इन्द्र धरती का वह समाट् है जो सुन्दर और प्रभावशाली वाणी बोलने में समर्थ है, जो अपने महान् शक्तिशाली कर्मों से राष्ट्र के नागरिकों को भी कर्मठ बनने का पाठ पढाता है तथा जो अत्यन्त मेघावी एवं प्रज्ञा सम्पन्न है। इस प्रकार के त्रिविध-गुणों से सम्पन्न इन्द्र का ही यह सामर्थ्य है कि वह स्वयं के तथा अपनी प्रजा के हित के लिये समस्त राष्ट्र को इतना समर्थ एवं शक्तिशाली बना देता है कि कोई भी शत्रु उस देश की ओर आंख उठा कर भी देखने का साहस नहीं कर सकता। वस्तुतः देश के सर्वोच्च शासक की सबसे बड़ी उपलब्धि भी यही है कि वह अपने राष्ट्र को पूर्ण सुरक्षा प्रदान करे तथा उसे शत्रुरहित बनादे। किन्तु यह सामर्थ्य भी शचीपति इन्द्र में ही सम्भव है

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो वचन-व्यवहार में कुशल, कर्म करने में अनालस तथा मेधा-सम्पन्न हो।

इस प्रकार अश्विन्, विष्णु तथा इन्द्र से धारित और रक्षित पृथ्वी रूपी माता हम सन्तानों के लिये सतत पयोधारा प्रवाहित करती रहे, यही मंत्र के तत्त्वद्रष्टा ऋषि की कामना है। पय, दूध, जल तथा अन्न - तीनों का वाचक है और प्राणधारण में इन तीनों की निर्विवाद भूमिका है। अतः हमारी पृथ्वी माता से यह प्रार्थना नितान्त संगत है कि जिस प्रकार माता अपनी सन्तान के लिये दुग्ध की धारा का प्रस्रवण करती है उसी प्रकार धरती माता भी अपनी सन्तानों के लिये पयोधारा को अविरत प्रवाहित करती रहे।

११

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु।
बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवी-
मिन्द्रगुप्ताम्। अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम्॥

धरती माता के नैसर्गिक सौन्दर्य को क्या कभी आपने देखा हैं, अथवा आपका सारा जीवन ही अपनी कोठी और अट्टालिका में दूरदर्शन को देखते हुए ही बीत गया। कभी फुरसत निकाल कर अपने घर के बाहर जायें और पृथ्वी के विराट् सौन्दर्य को देखें। धरती के भव्य और प्रभावी रूप को देखने के लिये जीवन की कृत्रिमता को त्यागना पड़ेगा और तब आप देखेंगे कि आपके नगर अथवा ग्राम के इर्दगिर्द अनेक रम्य किन्तु दुर्गम पर्वत-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रेणियाँ भी हैं। समय निकालकर इन गिरि पर्वतों पर चढ़ें, इनकी उपत्यकाओं के मनोज्ञ सौन्दर्य को निहारें। अवकाश मिले तो नगरों से दूर, बहुत दूर, उन हिमाच्छादित पर्वतशृंगों को भी देखें जिन पर बारहों महीने बर्फ छाई रहती है, जो तुषार मुकुट को धारण किये रहते हैं। समय पाकर गहन वनों में प्रवेश करें और आरण्यक पर्व मनायें। इन घने अरण्यों में आपको मीलों चलने पर भी सूर्य के दर्शन नहीं होंगे। ऊँचे-ऊँचे वृक्षों के सघन संकुल घेरों तथा लता वितानों ने इस आरण्यक धरती को असूर्यंम्पशा बना दिया है। यहाँ अनेक हिंसक जानवर निर्विघ्न विचरण करते हैं। यह है उस धरती की एक छवि, उस अछूती धरती का अनाघ्रात सौन्दर्य, जिसे शायद ही किसी ने गाढ दृष्टि से निहारा है।

हमारी कामना है कि ऐसे पर्वतों और वनों वाली यह पृथ्वी हमारे लिये सब प्रकार से सुखदायक हो। इससे हमें भद्र और कल्याण ही मिले, कभी हमारा अभद्र और अकल्याण न हो। यह धरती विश्वरूपा है, अनेक रूपों वाली है। इस पर पाई जाने वाली मिट्टी को ही देखें, वह नाना वर्णों वाली है। किसी प्रदेश की मिट्टी भूरे रंग वाली होने के कारण नाना वस्तुओं का उत्पादन करने में समर्थ है तो अन्य स्थानों की मिट्टी कृष्ण-वर्णा है, सघन फसल देती है। अन्यत्र यही धरणी रक्त वर्णा दिखाई देती है। इस प्रकार की यह विश्वरूपा धरती अपने ऊपर निवास करने वालों को ध्रुव जीवन प्राप्त कराती है। हमारे जीवन और कर्म में स्थैर्य लाने वाली भी धरती ही है। यद्यपि सामान्यतया इस धरती का पालन इसके नागरिक तथा शासक ही करते हैं किन्तु अन्ततः तो इन्द्र परमात्मा ही इसका रक्षक और पालक है। इस प्रकार परमैश्वर्यवान् इन्द्र द्वारा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्षित और पालित यह धरती हमारा सुदृढ़ आश्रय स्थान बन गई है।

इस पृथ्वी पर निवास करने वाला मैं धरती पुत्र अजित बन कर रहूँ। कोई मुझे पराजित न करे, मैं अहत और अक्षत रहूँ, न तो कोई मुझे मारे और न मुझे क्षति पहुँचाये। इस प्रकार सर्वथा स्थिर और आश्वस्त भाव से मैं इस पृथ्वी पर अपना जीवन व्यतीत करूँ। यह तभी सम्भव है जब मैं धरती माता के कण-कण से अपनत्व स्थापित करूँगा तथा उसके सभी गुणों और रहस्यों को जान लूंगा। ❁

१२

यत्ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः ।
तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रोऽहं
पृथिव्याः पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु ।।

पृथ्वी सूक्त के इस मंत्र में भूमि को मनुष्य की माता तथा स्वयं को उसका पुत्र कहकर पुकारा गया है। माता की प्रत्येक वस्तु पर उसकी सन्तान का अधिकार होता है। धरती माता से उत्पन्न प्रत्येक पदार्थ पर मनुष्य का निर्विवाद अधिकार है। यदि कोई शर्त है, तो इतनी ही कि पृथ्वी से प्राप्त इस सामग्री का, इन संसाधनों का भोग कोई व्यक्ति या राष्ट्र एकाधिकारी बन कर न करे। धरती की सभी सन्तानों को इन वस्तुओं को प्राप्त करने का अधिकार प्रकृत्ति ने स्वयं ही दे रक्खा है। अतः मंत्र कहता है कि हे पृथ्वी माता, जो पदार्थ तेरे मध्य भाग से, तेरे अन्त्य भाग से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा जो तेरे शरीर के ऊपरी भाग से उत्पन्न होते हैं वे हमें भली प्रकार से प्राप्त होवें। धरती का सबसे ऊपर का भाग हमें नाना प्रकार के अन्न, औषधियाँ तथा वनस्पतियाँ आदि प्राप्त कराता है। उसके मध्य भाग में अपार जल स्रोत विद्यमान हैं जिनसे हम वापी, कूप तड़ागादि का निर्माण कर जीवनोपयोगी जल प्राप्त करते हैं। इसी धरती का निम्नतम स्थल नाना मूल्यवान् धातुओं का अक्षय स्रोत है। शताब्दियों से किये जाने वाले खनन के पश्चात् भी स्वर्ण, रजत, ताम्र आदि के ये भण्डार अभी तक समाप्त नहीं हुए हैं। इन सभी वस्तुओं में हमारा भाग रहे और हम पवित्रता के साथ इन्हें प्राप्त करते रहें।

कहने को तो मनुष्य ने स्वयं को धरती का स्वामी घोषित किया, राजा के लिये भूपति, पृथ्वीपति, भूपाल, पृथ्वीपाल, धराधीश, पृथ्वीश आदि पर्यायों का प्रयोग हुआ है किन्तु वास्तव में मनुष्य है धरती पुत्र ही। धरती को हम माता ही मानें क्योंकि जननी के तुल्य यह हमारा पालन करती है, हमारा भरण-पोषण करती है, नाना प्रकार के रस और जलादि प्रदान कर हमें माता के तुल्य स्तन्यपान कराती है। अतः धरती और मनुष्य का सम्बन्ध माता-पुत्र का ही है। जब वेद ने धरती को माता का सम्मान दिया तो पिता की कल्पना भी आवश्यक हो गई। मंत्र के अनुसार पर्जन्य हमारा पिता है। सामान्यतया पर्जन्य मेघ का वाचक है। धरती को गर्भ धारण कराने में मेघ की ही सामर्थ्य है, अतः वैदिक साहित्य में पर्जन्य को सृष्टि का पिता यत्र-तत्र कहा ही गया है। व्यापक अर्थ में पर्जन्य जनयिता-उत्पादक का भी सूचक है। इस प्रकार जीवों को संसार में जन्म देने वाला परमात्मा भी पर्जन्य शब्द से वर्णित हुआ है। वेद में ईश्वर को जनिता और विधाता कहा ही गया है। उधर राष्ट्र का पालक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्राट् भी पर्जन्य पद वाच्य है। अतः मंत्रगत पर्जन्य पिता से ये सभी अर्थ ग्रहीत होंगे। गीता के अनुसार पर्जन्य ही अन्नोत्पत्ति का कारण होते हैं—पर्जन्यादन्न सम्भवः। मंत्र की समाप्ति इस कामना से होती है कि पर्जन्य पिता हमारी पालना करे और हमें धन-धान्य, सम्पत्ति, ऐश्वर्य सभी सुखों से परिपूर्ण बनावे। वेदों की यह उदात्त प्रार्थना धरती तथा बादल जैसे प्राकृतिक पदार्थों से मनुष्य की निकटता स्थापित करती है।

१३

यस्यां वेदिं परिगृह्णन्ति भूम्यां यस्यां यज्ञं तन्वते विश्वकर्माणः।
यस्यां मीयन्ते स्वरवः पृथिव्यामूर्ध्वाः शुक्रा आहुत्याः पुर-
स्तात्। सा नो भूमिर्वर्धयद्वर्धमाना ।।

पुरातन वैदिक धर्म में यज्ञ की महिमा नाना रूपों में स्वीकार की गई थी। यह यज्ञ शब्द अत्यन्त व्यापक अर्थों में प्रयुक्त होता था। सामुदायिक योग क्षेम को लक्ष्य में रखकर किये जाने वाले समष्टिहित के सभी कार्यों को यज्ञ की संज्ञा से अभिहित किया जाता था। कालान्तर में अग्निहोत्रादि कर्मों में यज्ञ शब्द का रूढिगत प्रयोग भी होने लगा और अश्वमेध, राजसूय, वाजपेय आदि सघन विधि-विधानों से युक्त यज्ञों का प्रचलन हुआ। तब यज्ञविधि को सम्पन्न करने के लिये वेदियाँ बनाई जातीं, यूपों का निर्माण होता तथा नाना आडम्बर एवं घटाटोप युक्त कार्य किये जाते। किन्तु मूलतः यज्ञ में लोकोपकार का ही भाव निहित है। परमात्मा भी यज्ञ रूपी श्रेष्ठतम कर्म के द्वारा ही सृष्टि का निर्माण करता है और इस यज्ञरूपी परमात्मा का भजन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी यज्ञ—श्रेष्ठकर्मों का ग्राचरण करके ही किया जाता है। प्रस्तुत मंत्र में यज्ञ कर्म में प्रयुक्त होने वाले उपकरणों तथा इसे सम्पन्न करने वाले पात्रों के माध्यम मे पृथ्वी के सम्यक् पालन को ही एक विराट् यज्ञ कर्म का प्रतीक कहा गया है।

राष्ट्र की सेवा में संलग्न पुरुष ही विश्वकर्मा हैं, जो इस पृथ्वी पर नाना राष्ट्रभृत यज्ञों का विस्तार करते रहते हैं। इन यज्ञों को सम्पन्न करने के लिये ही धरती पर विविध वेदियों का परिग्रहण किया जाता है। यज्ञस्थल ही वेदी कहलाता है। ग्रग्निहोत्र जैसे ग्रल्प सामग्री से सम्पन्न होने वाले यज्ञों के लिये धरती को खोदकर वेदी बनाई जाती है ग्रथवा धातु निर्मित हवनकुण्ड को ही वेदी का स्थानापन्न मान लिया जाता है, किन्तु लोकहित के लिये संचालित बड़े-बड़े शिक्षण संस्थानों, कल-कारखानों, खेतों ग्रौर खलिहानों जैसे वृहत् यज्ञों के लिये उतनी ही बड़ी वेदी-भूमि की ग्रावश्यकता होती है। वेदी निर्माण का यह बृहत् समारम्भ इन विश्वकर्माग्रों-नाना कर्मों में कुशल विशेषज्ञों द्वारा इस धरती पर ही होता है। पौराणिक देवगाथाग्रों में त्वष्टा ग्रथवा विश्वकर्मा को देवताग्रों के लिये गृह, भवन, नगर ग्रादि का निर्माण करने वाला देवता विशेष माना गया, किन्तु वेद में विश्वकर्मा ग्रपने व्युत्पत्तिलभ्य ग्रर्थ में संसार का रचयिता परमात्मा तथा नाना कर्मों के कर्त्ता मनुष्य का ही वाचक है। ऋषि दयानन्द ने स्व यजुर्वेद भाष्य (१७/२३) में विश्वकर्मा की व्युत्पत्ति इस प्रकार प्रदर्शित की है—विश्वानि कर्माणि करोति इति विश्वकर्मा, विविध कर्मसु निपुणः, ग्रखिलेषु कर्मसु कुशलः। ग्रर्थात् सब कामों का करने वाला, ग्रनेक कामों में कुशल, व्यक्ति ही विश्वकर्मा है। ऐसे ही विश्वकर्माग्रो ने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानवहित के जिन-जिन कर्मों का वितान-विस्तार किया है, वे ही यज्ञ रूप में हमें सर्वत्र दिखाई देते हैं।

यज्ञ वेदियों के उत्खनन और निर्माण के पश्चात् उनमें आहुतियाँ डालने का उपक्रम होता है। लोकहित विधायक कार्यों और योजनाओं की पूर्ति में देश के नागरिकों का योगदान ही उनके द्वारा डाली जाने वाली आहुतियाँ हैं। 'आहूयते प्रदीयते इति आहुतिः।' मंत्र में स्वरु शब्द भी पठित है जिसका अर्थ है घोषणा करने या सूचना करने का साधन। वस्तुतः नाना लोकोपकारी कृत्यों की सूचना देने वाले सूचना पट्ट भी इसी धरती पर ही गाडे जाते हैं।

धरती और धरती के पुत्रों की अभिवृद्धि अन्योन्याश्रित है। यदि हम धरती पर रहने वाले मनुष्य धरती को संरक्षित करते हुए उसकी वृद्धि करेंगे तो यह पृथ्वी भी हमारी माता की भांति हमारे सुख, सौभाग्य, आनन्द और आमोद-प्रमोद की वृद्धि करेगी। इस प्रकार स्पष्ट है कि पृथ्वी के पर्यावरण और उसके नैसर्गिक वातावरण की परिशुद्धि की ओर जितना हम ध्यान देंगे, नाना यज्ञ यागों द्वारा इस पृथ्वी के वायुमण्डल को धूमायित और सुगंधि से प्रपूरित करेंगे, यह धरती भी अपनी स्वाभाविक क्षमता और शक्ति के द्वारा हमें स्वस्थ अन्न, जल तथा अन्य पोषक तत्त्व प्रदान कर हमारी अभिवृद्धि में सहायक होगी।

१४

योनो द्वेषत्पृथिवि यः पृतन्याद्योऽभिदासान्मनसा यो वधेन।
तं नो भूमे रन्धय पूर्वं कृत्वरि ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभी लोग मातृभूमि के भक्त होते ही हों, ऐसी बात नहीं हैं। धरती माता के शत्रुओं की भी कमी नहीं हैं। मानव प्रकृति में समानता तो प्रायः कठिनता से ही मिलती है। प्रस्तुत मंत्र में द्रष्टा ऋषि ने इन व्यक्तियों और शक्तियों की ओर संकेत किया है जो हमारी मातृभूमि से द्वेष करते हैं, उसके उत्कर्ष को सहन नहीं करते और अपनी दुष्चेष्टाकों द्वारा माता धरित्री के गौरव को हानि पहुंचाना चाहते हैं। ऐसे लोगों को मंत्र में प्रमुखतः दो श्रेणियों में रक्खा है। प्रथम तो हमारे राष्ट्र के वे शत्रु हैं जो अपनी सेनाओं से चढाई कर स्वदेश को गुलाम बनाना चाहते हैं। यदि भारतीय इतिहास पर दृष्टिपात करें तो भारत पर किये गये सैन्य आक्रमणों की संख्या बहुत अधिक दिखाई देती है। यूनानी आक्रमण, शक और हूण आदि मध्य ऐशिया की जातियों के आक्रमण, तुर्कों, पठानों, मुगलों आदि मुस्लिम आकान्ताओं के इन हमलों ने भारत के शान्त वातावरण को रक्तमय किया है। अस्त्र-शस्त्रों के बल से किये जाने वाले आक्रमणों में हमारे देश ने सदा पराजय ही देखी है, ऐसी बात भी नहीं है किन्तु परस्पर को फूट, विग्रह तथा सैन्य बलों में सामञ्जस्य और समन्वय के अभाव के कारण ही हमें हार उठानी पड़ी।

मंत्र में सैनिक आक्रमण से भिन्न एक अन्य प्रकार के सांस्कृतिक आक्रमण की भी बात कही गई है। जो हमें वैचारिक दासता में फंसाना चाहते हैं, अपनी भाषा, संस्कृति और विचार-धारा को हम पर थोप कर जो हमें मानसिक दासता में धकेलना चाहते हैं, उनका यह आक्रमण अधिक उग्र, कठिन तथा दूरगामी परिणाम वाला होता है। इसका उदाहरण पश्चिमी राष्ट्रों द्वारा भारत पर भौतिक तथा मानसिक दोनों प्रकार के आधिपत्य की स्थापना का है। फ्रांस ने पाण्डिचेरी, माहें, कारिकल तथा चन्द्र-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नगर में अपने उपनिवेश स्थापित किये तो वहाँ फ्रैंच संस्कृति का बोलबाला रहा। पुर्तगालियों के अधीन रहे गोवा, दमण तथा दीव के लोग पोर्चुगीज संस्कृति में रंग गये। उधर अंग्रेजी शासन के अधीन रहे भारत ने तो मैकाले के स्वप्न को ही साकार किया और काले साहब पैदा करने का मानदण्ड स्थापित किया।

हमारी यह मानसिक दासता देश के स्वाभिमान और गौरव को नष्ट करने में कितनी प्रभावी रही, इसे सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं हैं। अंग्रेजी सभ्यता से आक्रान्त भारतवासी, क्या भाषा और क्या भाव, खान पान, रहन सहन वेषभूषा में भी परकीयों का अनुकरण करने वाले बन गये। परोक्ष रूप में किये जाने वाले अन्य राष्ट्रों के इस सांस्कृतिक आक्रमण को लक्ष्य में रख कर मातृभूमि का भक्त स्पष्ट घोषणा करता है कि हे मातृभूमि, यदि कोई व्यक्ति या राष्ट्र द्वेष भावना से हथियारों के वल पर सेना को संगठित कर हम पर आक्रमण करे अथवा हमें मानसिक गुलामी में जकड़ने का प्रयत्न करें तो ऐसे हमलावरों के दुष्टतापूर्ण मनसूबों को तू सर्वथा नष्ट कर दे। हम अपने स्वदेश प्रेम से ऐसी प्रेरणा ग्रहण करें ताकि विदेशों से होने वाले सैनिक आक्रमणों तथा सांस्कृतिक दासता में फंसाने वाले षड्यंत्रों को पूरी तक कुचलने की शक्ति हम अर्जित कर सकें।

☐

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१५

त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं-चतुष्पदः ।
तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति ॥

शरीर देने वाली माता की ही भांति धरती की भी जननी संज्ञा है । इस मातृभूमि से ही हम उत्पन्न होते हैं और इस पर ही हम विचरण करते हैं । धरती से उत्पन्न अन्न-जल से प्रत्येक प्राणधारी के शरीर की पुष्टि और पालन होता है । जीवन-पर्यन्त वह धरती पर ही विचरण करता है । यों कहने के लिये तथा व्यवस्था के लिये भिन्न - भिन्न देशों की सीमायें बनाई गईं और उनकी हदों का निर्माण हुआ, किन्तु हैं ये सब धरती के ही भाग । अतः मंत्र का यह कथन अत्यन्त औचित्य पूर्ण है कि मरण-धर्मा सभी प्राणी, चाहे वे मनुष्य की भांति दोपाये हैं अथवा अन्य पशुओं की भांति चौपाये, इसी धरती पर चलते फिरते और नाना प्रकार के कर्म करते हैं ।

यदि पशु पक्षियों को भी वर्गीकृत किया जा सकता है तो मानव जाति को गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार भिन्न-भिन्न वर्गों में विभाजित किया जाता भी अस्वाभाविक नहीं है । इस मंत्र में पञ्च मानवाः का उल्लेख है । आर्य शास्त्रों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के क्रम से वर्णों का चतुर्धा उल्लेख मिलता ही है, यत्र तत्र पञ्च जनाः तथा 'पञ्च मानवाः' का भी संदर्भ आया है । आचार्य यास्क ने पञ्च मानवों में चारों वर्णों के अतिरिक्त निषाद

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को पञ्चम वर्ण की संज्ञा दी है। यद्यपि निरुक्त शास्त्र की प्रक्रिया के अनुसार पाप में रत मनुष्य को ही निषाद कहा जा सकता है। यों देखा जाये तो वृहत् मानव समाज में धर्मात्मा और पापाचारी, दैवी प्रवृत्ति वाले और आसुर प्रकृति वाले, सभ्य और असभ्य, सदाचारी और दुराचारी, आर्य और अनार्य सभी किस्म के लोग रहते आये हैं और धरती ने अपने ऊपर रहने और विचरण करने का अधिकार भी इन सभी को प्रदान किया है। ऋग्वेद में (१०।५३।४) 'पञ्चजना: मम होत्रं जुषध्वम्' वाक्य आया है। इसके अनुसार पाँचों प्रकार के लोगों को यज्ञ में बैठने का अधिकारी माना गया है। निश्चय ही यदि पाँचवें जन के रूप में हम पापी निषाद को लें, तो यज्ञ जैसे पवित्र कर्म में उसके सम्मिलित होने को उचित नहीं माना जा सकता। अत: पञ्च-मानवा: में आर्यों की समाज व्यवस्था के अन्तर्गत आने वाले चातुर्वर्णिक आर्य समाज के अतिरिक्त एक ऐसे वर्ण को भी लेना पड़ेगा जो सही अर्थों में चातुर्वर्ण्य को स्वीकार नहीं करता, तथापि वह है इसी मनुष्य समाज का अंग। इसी अभिप्राय का द्योतन करने के लिये मंत्र ने स्पष्ट कहा कि धरती पर रहने वाले ये पञ्च मानव भी पृथ्वी पुत्र ही हैं, धरती माता की ही सन्तान हैं।

गुण, कर्म, स्वभाव, व्यवसाय और प्रवृत्तियों में अनेकता होने पर भी धरती के निवासी मानवों की मौलिक एकता का एक स्पष्ट प्रमाण मंत्र के अन्तिम पद में दिया गया है। इसमें कहा गया है कि अपनी किरणों के द्वारा अमृतमय ज्योति का प्रसार करने वाला यह उदीयमान सूर्य अपनी इन प्रकाशमान् रश्मियों का विस्तार इस धरती पर रहने वाले इन्हीं लोगों के लिये करता है। वस्तुत: सूर्य यहाँ उन सभी प्राकृतिक पदार्थों के प्रतीक के रूप में आया है जो मानव हित के लिये इस धरती पर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदा से उपलब्ध रहे हैं । सूर्य की ही भांति धरती पर प्रवाहित होने वाली जलधारायें, समग्र भूमण्डल पर प्रसारित होने वाला, प्रवाहित होने वाला वायु, लता, वृक्ष, वनस्पति, औषधि आदि उद्भिज—ये सब मानव का हित करने के लिये सदा से तत्पर तथा सदैव उपलब्ध रहे हैं ।

सूर्य की रश्मियों से उत्पन्न ऊष्मा, जल की शीतलता, वायु का प्राणदायी स्पर्श, अन्न, फल आदि से प्राप्त होने वाले पोषक तत्त्व यदि ब्राह्मणादि वर्णों के लिये प्रकृति का वरदान हैं तो वे इस आर्य सभ्यता से पृथक्भूत इतर जनों के लिये भी सर्वथा सुलभ हैं । धरती माता का गौरव इसी बात में है कि बिना किसी भेदभाव के, सभी मनुष्य और पशु-पक्षी इसे अपना आवास बनाये हुए हैं, इस पर उत्पन्न होते हैं, चलते फिरते हैं तथा सूर्य की रश्मियों से अपने शरीर का स्पर्श कराकर अमृत के तुल्य पुलक का अनुभव करते हैं ।

१६

तानः प्रजाः सं दुह्रतां समग्राः ।
वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्यम् ।।

पूर्व मंत्र में पञ्च मानवों से युक्त धरती की प्रजा का उल्लेख हुआ । ये प्रजायें परस्पर मिलकर हमारे लिये सभी प्रकार के पोषणीय पदार्थों को प्राप्त करायें । राष्ट्र के समग्र और सर्वांगीण विकास के लिये सभी प्रजाजनों के सम्मिलित प्रयत्न, समष्टिगत पुरुषार्थ तथा सामूहिक प्रयास की आवश्यकता होती है । राष्ट्र

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के नागरिकों का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वे अपनी-अपनी क्षमता, शक्ति, रुचि तथा पुरुषार्थ के द्वारा एक ऐसे वातावरण का निर्माण करें ताकि उनके सम्मिलित प्रयत्नों से राष्ट्र के लिये उपयोगी तत्त्वों तथा प्राकृतिक साधनों का दोहन किया जा सके। यही भाव मंत्र के प्रथम पद में व्यक्त हुआ है।

राष्ट्र को उन्नति के पथ पर अग्रसर करने वाला एक अन्य तत्त्व है राष्ट्रवासियों की वाणी में माधुर्य रस का होना। मन, वाणी और कर्म एक-दूसरे से जुड़े हैं, अन्योन्याश्रित हैं। हमारे मनोद्भूत विचारों को वाणी के द्वारा ही व्यक्त किया जाता है। मधु से सिक्तवाणी की महिमा आर्य शास्त्रों में सर्वत्र अंकित है। अथर्ववेद का मंत्र जहाँ पुत्र को पिता का अनुगामी होने तथा माता के अनुकूल मन वाला होने की बात कहता है, वहाँ वह पत्नी को पति को प्रसन्न करने वाली मधुमति वाणी बोलने का भी आदेश देता है। अतः धरती माता से राष्ट्र के नागरिक की यह प्रार्थना समुचित ही है कि तुम्हारे वरदान से हम मधुमयी वाणी को धारण करें।

१७

विश्वस्वं मातरमोषधीनां ध्रुवां भूमिं धर्मणा धृताम्।
शिवां स्योनामनुचरेम विश्वहा ॥

प्रस्तुत मंत्र में माता धरती के कुछ और गुण तथा विशेषतायें बताई गई हैं। इसमें सर्व प्रथम उसे 'विश्वसू' अर्थात् सब-कुछ को उत्पन्न करने वाली कहा। पृथ्वी का यह विशेषण सर्वथा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सार्थक है। मानवहित की ऐसी कौनसी वस्तु है, जिसे धरती माता उत्पन्न नहीं करती। शरीर के पालन के लिये आवश्यक अन्न, जल, फल, वनस्पतियाँ, मानव के निवास के लिये आवश्यक प्रस्तर, मिट्टी, उसके रोग निवारण के लिये उपयोगी औषधियाँ, सब कुछ तो पृथ्वी से ही हमें प्राप्त होता है। इसी भाव को और स्पष्ट करने के लिये उसे औषधियों की माता कहा गया। इन सब औषधियों के गुणों और उनकी उपयोगिता को जानने वाले औषधिविज्ञानवेत्ता तथा वैद्य इस बात के साक्षी हैं कि इन औषधियों में हमारे शरीर में उत्पन्न कठिन से कठिन व्याधियों के निवारण की क्षमता है। मनुष्य तो परीक्षण तथा जांच के पश्चात् इन जड़ी बूटियों का उपयोग करता है, किन्तु प्रकृति ने पशु-पक्षियों को कुछ ऐसी नैसर्गिक शक्ति दी है, जिससे वे अपने रोग निवारण तथा स्वास्थ्य लाभ के लिये इच्छित जड़ी को धरती से खोद निकालते हैं।

धरती का धारण शासक कैसे करें? राष्ट्र का शासन और संचालन किन नियमों, मूल्यों और विधानों के द्वारा किया जाय? यह एक मौलिक प्रश्न है और इसका उत्तर अनेक विधि-शास्त्रियों, संविधान विशेषज्ञों तथा राजनीतिविदों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से दिया है। शासन की विभिन्न प्रणालियाँ भी शताब्दियों से प्रचलित रही हैं। वंशानुगत शासन का राजतंत्र विभिन्न देशों में चलता रहा। प्रजा के प्रतिनिधियों को शासन सौंपने वाली गणतंत्र प्रणाली भी भारत तथा अन्य देशों में प्रचलित रही। किन्हीं देशों में राजकुलों तथा सामन्त वर्ग के कुलीन लोगों के कुछ चुने हुए व्यक्तियों के हाथ में शासन की बागडोर रही। समय-समय पर सैनिक तानाशाही तथा हिटलर एवं मुसोलिनी जैसे तानाशाहों ने भी अपने देशों पर स्वेच्छाचारी तंत्र चलाया।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

साम्यवादी शासन के प्रयोग भी हुये, जिसमें केवल एक दल (कम्युनिस्ट पार्टी) को ही राजनीति और शासन की भागीदारी मिली।

हमें यह जानना है कि इस विषय में वेद का क्या मत है? अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त का प्रस्तुत मंत्र स्पष्ट घोषित करता है कि धरनी का धारण तथा संचालन तो धर्म के द्वारा ही होता है। किन्तु प्रश्न यह है कि धर्म किसे कहा जाये। क्या राजाज्ञा ही धर्म है। सत्य तो यह है कि धर्म को परिभाषित और व्याख्यात करने के लिये संस्कृत से भिन्न किसी अन्य भाषा या साहित्य से हमें कोई सहायता नहीं मिलेगी। कारण स्पष्ट है, धर्म का ठीक और सही पर्याय संसार की अन्य किसी भाषा में उपलब्ध ही नहीं है। यह तो स्पष्ट ही है कि मंत्र में प्रयुक्त धर्म, वर्तमान प्रचलित हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी, ईसाई आदि किसी मत-सम्प्रदाय का वाचक नहीं है, अतः हिन्दू राज्य अथवा मुस्लिम हकूमत जैसी किसी अवधारणा को स्वीकार करना भी उचित नहीं। यदि हम प्रस्तुत मंत्र के इस अंश 'ध्रुवां भूमिं धर्मणा धृताम्' का अभिप्राय जानना चाहते हैं तो हमें इसी सूक्त के प्रथम मंत्र के उन सात तत्त्वों को दृष्टि में लाना होगा। सत्य, बृहद्, ऋत, उग्रता, दीक्षा, तप, ब्रह्म और यज्ञ, यही सात धर्म के वे अंग हैं जो पृथ्वी को धारण करते हैं। अतः शासकों को इन्हीं आदर्शों को अपनाना चाहिए। भारतीय जीवन पद्धति में शासक को जो धर्मावतार और धर्ममूर्ति कहा जाता है वह केवल उसका यशोगान ही नहीं है। शासक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह धर्म के द्वारा ही शासन चलाये। आर्यावर्त के इतिहास में ऐसे राजाओं के अनेक उदाहरण मिलते हैं जिन्होंने राष्ट्र संचालन में धर्म को सर्वोपरि महत्त्व दिया। इसीलिये राम जैसे आदर्श नरेश को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म का विग्रह कहा गया—रामो विग्रहवान् धर्मः। आज जो धर्मनिरपेक्ष शासन का विचार प्रचलित है वह इस सीमा तक तो ठीक है कि शासन को किसी भी मत-मतान्तर तथा उपासक-सम्प्रदाय के प्रति पक्षपाती नहीं बनना चाहिए, किन्तु इसका यह भी अर्थ नहीं कि न्याय, दया, उदारता, सद्भाव, करुणा, प्रेम जैसे वैश्विक आदर्शों को भुलाकर शासन सूत्र का संचालन किया जाये।

पृथ्वी माता का भक्त मंत्रान्त में कहता है कि धर्म से धारण की जाने वाली इस कल्याणी तथा सुख देने वाली धरती की हम सब प्रकार से सेवा और परिचर्या करें। इसी में हमारा हित है।

१८

महत्सधस्थं महत्ती बभूविथ महान्वेग एजथुर्वेपथुष्टे।
महांस्त्वेन्द्रो रक्षत्यप्रमादम्।
सा नो भूमे प्ररोचय हिरण्यस्येव संदृशि मानो द्विक्षत कश्चन॥

पृथ्वी के समान, महान् और क्षमाशील और कौन है? इसे सर्वसहा कहा गया है। धरती देवताओं और असुरों, धर्मात्माओं और पापियों, परोपकारियों और अपकारियों, साधुओं और दुष्टों को समान रूप से सहती है। स्वयं महान् होने के कारण यह सभी जड़ चेतन जगत् के लिये भी एक महान् आश्रय-स्थान बन गई है। यदि स्वकर्त्तव्यपालनरत अच्छे और ईमानदार नागरिकों का निवास इस धरती पर है तो न्याय और कानून

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का उल्लंघन करने वाले चोर, डाकू और तस्कर भी अपना जीवन इसी के गोपनीय स्थलों में छिपकर व्यतीत रहते हैं। किन्तु धरती तो उन्हें भी शरण और आश्रय देती ही है। इस धरती का चलना और हिलना भी महान् है। धरती के चलने और कम्पित होने को भौतिक दृष्टि से भी समझना चाहिए। वस्तुतः अनेक भौगोलिक एवं भूगर्भीय प्रक्रियाओं के कारण धरती जब कांपने लगती है तो हम उसे भूकम्प कहते हैं। इससे अशेष धन, जन और प्राणों की हानि होती है। धरती के चलने, गति करने, अपनी कक्षा तथा सूर्य के चारों ओर घूमने के विषय में वैज्ञानिकों ने स्वमत व्यक्त किये हैं। सारांश यह है कि धरती की गति तथा उसका कम्पन सब कुछ दिव्य है, महान् है, विराट् है।

धरती के चलने और कम्पन की उसके धरातल पर होने वाली महान् मानवी हलचल से भी तुलना की जा सकती है। मानव जाति ने अपने सहस्राब्दियों के इतिहास में जो कुछ अच्छे, बुरे, प्रशंसास्पद अथवा निन्दास्पद कार्य किये हैं, वे इस धरती की गति तथा कम्पन के ही प्रतीक हैं। यदि इस धरती पर सुख, शान्ति, सौमनस्य तथा बंधुत्व के भावों को प्रसारित करने वाले महामानवों का आविर्भाव हुआ तो मानवी सृष्टि को युद्धों की ज्वालाओं में ढकेल कर हिंसा, अत्याचार, शोषण तथा उत्पीड़न का नग्न ताण्डव करने वाले नर-पशुओं की भी यहां कमी नहीं रही। किन्तु इस सर्वंसहा धरणी ने इन सभी को धैर्यपूर्वक सहा।

धरती की प्रमाद रहित रक्षा करने का भार इन्द्र रूपी परमात्मा तथा सम्राट् पर ही है। परमात्मा के तो प्रमादी होने का सवाल ही नहीं उठता, क्योंकि वह तो स्वयं के नियमों का स्वयं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही पालन करने वाला, सत्य और ऋत का धारणकर्त्ता है। किन्तु धरती का पालन करने वाले सम्राट् को भी प्रमादरहित होकर ही शासन सूत्र का संचालन करना चाहिए। वह अतन्द्रित भाव से अहर्निश प्रजापालन को ही अपने जीवन का एक मात्र लक्ष्य समझे, तभी राष्ट्र का सम्यक् विकास हो सकता है। मन्त्रान्त में मातृभूमि का भक्त प्रार्थना करता है कि वह स्वर्ण के समान मनोहर कान्ति से सम्पन्न तथा तेजस्वी व्यक्तित्व का धनी बने। मातृभूमि द्वारा प्रदत्त ऐश्वर्य और जीवन निर्माण के तत्त्व ही उस नागरिक के जीवन और चरित्र को स्वर्णिम बनाते हैं। एक अन्य प्रार्थना यह है कि इस सद्भावना सम्पन्न, राष्ट्र के नागरिक से कोई द्वेष न करे। यह स्वयं भी द्वेष भाव का परित्याग कर चुका है, तो अन्य लोग भी भला उसके प्रति विद्वेष क्यों रखेंगे।

१९

अग्निर्भूम्यामोषधीस्वग्निमापो बिभ्रत्यग्निरश्मसु।
अग्निरन्तः पुरुषेषु गोष्वश्वेष्वग्नयः॥

पृथ्वी सूक्त के १९, २० और २१ वें मंत्र में अग्नि शब्द का अनेक बार प्रयोग हुआ है। यह तो निश्चत है कि इन मंत्रों में 'अग्नि' चूल्हे में जलने वाली आग का प्रतीक नहीं है। शब्दों के व्यञ्जनापरक अर्थों को समझे बिना किसी भी काव्य या साहित्यिक कृति के वास्तविक अभिप्राय को समझना कठिन हो जाता है। जब हम कहते हैं कि नेताजी के हृदय में देशभक्ति की आग जल रही थी, तो यह कोई ऐसी आग नहीं है जो किसी को भस्म कर देती है। जब हम कहते हैं कि पं. जवाहरलाल

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेहरू का भाषण आग से भरा हुआ था, तो यहाँ भी आग के निहितार्थ को समझना होगा। अंग्रेजी में Firey Speech का प्रयोग देखा जाता है। इसी भाव को हृदयंगम करने के पश्चात् सूक्त के इन मंत्रों में प्रयुक्त अग्नि के वास्तविक अर्थ पर ध्यान देना चाहिए।

यहाँ कहा गया है कि हमारी इस भूमि में अग्नि है, इसकी औषधियों में अग्नि है, इसके जल अग्नि को धारण करते हैं और वही अग्नि पत्थरों में भी है। इतना ही नहीं इस धरती के निवासी पुरुष तथा यहाँ की गौवें और घोड़े भी अग्नि युक्त हैं। निश्चय ही मंत्र में आया अग्नि तेजस्विता का प्रतीक है। किसी वस्तु या पदार्थ की गुणवत्ता, उसकी विशिष्टता ही उसमें विद्यमान अग्नि है। अतः हमारी धरती, उसमें से उत्पन्न औषधियाँ, उसकी जलधारायें, उसकी प्रस्तर शिलायें, उसके ऊपर रहने वाले पुरूष और गाय, अश्व आदि पशु सभी तेजस्वी, तथा दिव्य शक्तियों से युक्त हैं।

२०

अग्निर्दिव आतपत्यग्नेर्देवस्योर्वन्तरिक्षम् ।
अग्नि मर्तास इन्धते हव्यवाहं घृतप्रियम् ।।

हमारी मातृभूमि में इस प्रकार की दिव्यता, तेजस्विता तथा वर्चस्व का संचार कहाँ से होता हैं। इसके निवासियों में यह अग्नि का तेज कहाँ से आकर संचरित होती है। वस्तुतः ब्रह्माण्ड के अन्य लोक-लोकान्तर ही मानो हमारी इस धरती

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर अग्नि रूपी दिव्यता की वर्षा कर रहे हैं। द्युलोक ने पृथ्वी पर अग्नि को तपाया, उधर निरभ्र विस्तृत अन्तरिक्षलोक भी अग्नि से व्याप्त है। सत्य तो यह है कि इस धरती पर रहने वाले मानव को द्युलोक और अन्तरिक्ष लोक भी अग्नि युक्त बनने की प्रेरणा देते हैं। तभी तो इस राष्ट्र के पुरुषों ने अग्नि को अपना आदर्श बनाया है। अग्नि के समान आगे बढना, अग्रगामी होना तथा अन्यों का नेतृत्व करना हम इस अग्निहोत्र की अग्नि से भी सीखते हैं जो यज्ञ कुण्ड में डाले जाने वाले द्रव्य (आहुति दी जाने वाली सामग्री) को सूर्य, चन्द्र, जल, वायु आदि देवों तक पहुंचाने के कारण हव्यवाह कहलाती है तथा जिसमें अनेक घृताहुतियाँ देकर उसे अधिक उद्दीप्त, प्रज्वलित तथा भ्राजमान बनाया जाता है। अग्नि के यही गुण और कर्म अग्निहोत्र के प्रसंग में प्रयुक्त हुए हैं।

यदि पृथ्वी के निवासी नागरिकों में इस अग्नि तत्त्व का उद्दीपन हुआ तो निश्चय ही वे लोग संसार में व्याप्त अज्ञान, अन्याय, अत्याचार और अभाव को उसी प्रकार भस्मसात कर देंगे जिस प्रकार यज्ञाग्नि को समर्पित शाकल्य और घृत जलकर भस्म हो जाते हैं।

२१

अग्निवासाः पृथिव्यसितज्ञूस्त्विषीमन्तं संशितं मा कृणोतु ।

धरती के कण - कण में जब अग्नि का निवास है तो इसे अग्निवासा - आग्नेय वस्त्रों को धारण करने वाली कहना उचित

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही है। धरती का परिधान ही अग्नि है। यहाँ के कण-कण में शौर्य, वीर्य, पराक्रम तथा पौरुष निहित है, मानो अग्नि तुल्य ज्वाला और आभा से धरती ने स्वय को उसी प्रकार आच्छादित कर लिया है जैसे कोई युवती लाल वस्त्र धारण कर 'अग्निवासा' का विरुद प्राप्त कर लेती है। धरती के निवासियों में जो कर्मठता, पुरुषार्थ, साहस और कुछ कर गुजरने का जज्बा है, वह इसे मातृभूमि से ही प्राप्त हुआ है।

यह पृथ्वी हमें इस बात का भी ज्ञान कराती है कि परमात्मा ने मनुष्य को जन्म और स्वभाव से ही बंधन रहित उत्पन्न किया है। प्रकृति से ही स्वातन्त्र्यप्रिय मानव यदि पराधीनता के पाशों में बंधता है तो उसके कुछ कारण होते हैं और जब ऐसे परतंत्र मनुष्यों में स्वयं को पराधीनता के उस बंधन से मुक्त होने की तीव्र आकांक्षा उत्पन्न होती हैं तो वे संघर्ष करके स्वयं को स्वतंत्र भी कर लेते हैं। इस अग्निवस्त्रा तथा पराधीनता के पाशों को काटने की प्रेरणा देने वाली धरती से हम स्वयं के लिए तेजस्विता और तीक्ष्णता की याचना करते हैं। स्वयं तेजस्वी और शत्रु के प्रति कठोरता का आचरण करने वाले नागरिक ही धरती के गौरवशाली पुत्र कहलाते हैं। अतः हमारी धरती माता से हमें तेजस्वी और तीक्ष्ण बनाने की प्रार्थना सर्वथा सार्थक ही हैं।

२२

भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यमरंकृतम् ।
भूम्यां मनुष्या जीवन्ति स्वधयान्नेन मर्त्याः ।
सा नो भूमिःप्राणमायुर्दधातु जरदष्टिं मा पृथिवी कृणोतु ।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्य शास्त्रों में मानवी प्रजा का अनेक प्रकार से विभाजन किया गया है। कहीं दैवी, मानुषी और आसुरी कहकर उसका वर्गीकरण किया गया है तो अन्यत्र देव और मानव के रूप में उसे दो प्रकार का माना है। प्रस्तुत मंत्र में धरती को देवी कर्म का आधार तथा सामान्य मनुष्यों का प्राणाधार कह कर वर्णित किया गया है। इसी धरती पर देवताओं की प्रसन्नता के लिये देव-पूजा के लिये विभिन्न प्रकार के यज्ञ किये जाते हैं जिनमें उनके लिये उत्तम प्रकार से तैयार की गई हवियाँ दी जाती हैं। मनु स्मृति में वर्णित ब्रह्म, देव, पितृ, बलिवैश्व और अतिथि जैसे पञ्च महायज्ञों का विधान है और इन यज्ञों में तत् तत् देवता के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार की हवियाँ-हव्य पदार्थ अर्पित किये जाते है। अग्नि आदि भौतिक देवताओं की शुद्धि और पुष्टि के लिये घृत, शाकल्य आदि पदार्थ प्रयुक्त होते हैं तो पूज्य वयोवृद्ध माता-पिता, पितामह आदि पितरों की तृप्ति नाना सुस्वादु भोज्य पदार्थों द्वारा की जाती है। कुत्ते, कौवे आदि तुच्छ जीवों को अन्न ग्रास दिये जाते हैं तो आगत अतिथि का सत्कार भी समुचित अन्न, जल, आसन आदि द्वारा किया जाता है। हमारा सर्वोपरि पूज्य परमात्मा है और वह हमारी स्तुति, प्रार्थना और उपासना रूपी भक्ति का हव्य स्वीकार करता हैं। इस प्रकार देवपूजा, संगतिकरण और दानादि दिव्य भावों के व्यंजक यज्ञ इस धरती पर ही होते हैं।

सामान्य रीति से जीवन धारण करने वाले मर्त्यधर्मा मनुष्यों को इच्छित अन्न जल आदि की प्राप्ति भी इस धरती पर ही होती है। वस्तुतः अन्न और जल का प्रकृत स्रोत तो धरती ही है कि क्योंकि धरती के गर्भ से निकले स्रोतों तथा कूप, वापी आदि का जल ही हम पीते हैं और धरती की कोख से उत्पन्न नाना अन्नों का भोजन करते हैं। इस प्रकार यह धरती दैवी कर्मों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और मानुषी कर्मों को सम्पन्न करने का एक सुन्दर आधार है। यज्ञ पद वाच्य सभी राष्ट्रहित तथा व्यापक जनहित के कार्य धरती पर ही किये जाते हैं। सामान्य मनुष्यों के प्राणधारण में कारणभूत अन्न-जल आदि भी धरती से ही प्राप्त होते हैं।

ऐसी उदारमना, विश्वम्भरा धरती से हम बलशाली प्राणों और दीर्घायु की कामना करते हैं। धरती का प्रदूषण रहित सात्विक पर्यावरण हमारे प्राणों को स्वस्थ और बलशाली बनाता है। हमारी यही प्राण शक्ति हमें दीर्घायु प्रदान करती है। कारण स्पष्ट है। आयु का बढना या घटना प्राणों के सबल और निर्बल होने पर ही आधारित है। जब हम प्राणायामादि के द्वारा अपने प्राणों को सशक्त बनायेंगे तो दीर्घायु प्राप्त होने और वृद्धावस्था तक जीवित रहने की सामर्थ्य हममें स्वयं ही आयेगी। वेद अल्प-कालिक जीवन को मनुष्य का आदर्श नहीं मानता। इसका आदर्श है दीर्घ जीवन। शत वर्षों से भी अधिक काल तक अदीन होकर जीना।

२३

यस्ते गन्धः पृथिवि संबभूव यं बिभ्रत्योधषयो यमापः।
यं गन्धर्वा अप्सरसश्च भेजिरे तेन मा सुरभिं कृणु।
मानो द्विक्षत कश्चन ।।

विगत १६, २०, २१ संख्या वाले मंत्रों में पृथ्वी में अग्नि की विद्यमानता का विशेष लाक्षणिक शैली में वर्णन किया गया था। उसी प्रकार मंत्र संख्या २३, २४, २५ में 'गंध' शब्द भी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष अर्थों से गर्भित है। यों तो दर्शनशास्त्र में 'गन्धवती पृथ्वी' कहकर गंध को पृथ्वी का मुख्य गुण बताया गया है किन्तु यहाँ प्रयुक्त गंध शब्द अधिक व्यापक अर्थ में आया है। यहाँ प्रथम तो यह कहा गया कि हे माता धरिणी, तुझसे उत्पन्न जो गंध है उसे समस्त औषधियाँ धारण करती हैं और तुझसे प्रवाहित होने वाले जल भी उसी गंध को धारण करते हैं। वस्तुतः धरती से उत्पन्न होने वाली नाना औषधियों तथा वनस्पतियों में जो पोषक तत्त्व, रोगनाशक गुण तथा शारीरिक स्वास्थ्य को देने वाली शक्ति है, वह धरती के गुण गंध के कारण ही है। इसी प्रकार धरती के गर्भ से फूटने वाले प्राकृतिक जलस्रोतों तथा उसके वक्ष पर बहने वाले नदी, नालों तथा अन्य प्रकार के जल-प्रवाहों में जो पदार्थों और प्राणियों को शुद्ध, पवित्र तथा प्रफुल्लित करने की शक्ति है, वह भी पृथ्वी के गंध गुण से ही उद्भूत है।

औषधियों और जलों में प्राप्त होने वाली गंध को तो एक भौतिक द्रव्य कहा जा सकता है, किन्तु इस धरती ने हमारे राष्ट्र के युवकों और युवतियों को एक अन्य प्रकार की सुगंध से सुवासित किया है। यह उनके शारीरिक लावण्य में तो लक्षित होती ही है, उनके चारित्रिक उत्कर्ष में भी दृष्टिगोचर होती है।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि प्रस्तुत मंत्र में गन्धर्व तथा अप्सरा ये दो शब्द प्रयुक्त हुए हैं। पौराणिक तथा संस्कृत के परवर्ती साहित्य में गन्धर्व तथा अप्सरा विशिष्ट देव योनियों के रूप में कल्पित किये गये। गंधर्वों को देवजाति का गायक कहा गया तो अप्सरा के रूप में देव सभा में नृत्य, गीत, वादित्र आदि कलाओं का प्रदर्शन करने वाली युवा स्त्रियों की कल्पना की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गई। गंधर्व, अप्सरा, चारण, यक्ष, किन्नर, विद्याधर आदि अनेक कला जीवी वर्गों का उल्लेख पुराणों में अनेकत्र हुआ है। किन्तु वेदों में ये शब्द इन अवान्तरकालीन अर्थों का द्योतन नहीं करते। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार सुन्दर युवकों की गंधर्व संज्ञा है और सुशोभन युवतियाँ अप्सरा संज्ञक हैं। इस प्रकार मंत्र प्रयुक्त ये दोनों शब्द धरती पर निवास करने वाले इन युवक-युवतियों के प्रतीक हैं जो अपने शारीरिक स्वास्थ्य, सौन्दर्य, मानसिक एवं बौद्धिक गुणों के कारण राष्ट्र की धुरी के सच्चे वाहक हैं। इनमें शरीरगत और चरित्रगत सौन्दर्य की जो विशिष्ट गंध है, वह भी धरती से ही प्राप्त हुई है। कारण स्पष्ट है। मातृभूमि के जिन भौतिक उपादानों (जल, वायु, अन्न वनस्पति आदि) से इनका शरीर सुन्दर और पुष्ट बना है उसी प्रकार उनके मन और चरित्र का सूक्ष्म सौन्दर्य भी धरती की ही देन है।

अतः हमारी माता धरती से प्रार्थना है कि हे मातः जो सुगंध तेरे गंधर्व और अप्सराओं को प्राप्त है, वहीं हमें भी प्राप्त करा, ताकि हम भी वैसी ही चारित्रिक सुगंध से स्वयं को सुवासित करें तथा अपने समीप के वातावरण को भी मादक बनायें। हमारे प्रति किसी का द्वेष न हो, यह प्रार्थना की पुनरावृत्ति धारणा को दृढ़ करने के लिये है।

२४

यस्ते गन्धः पुष्करमाविवेश यं संजभ्रुः सूर्याया विवाहे। अमर्त्या पृथिवि गन्धमग्रे तेन मा सुरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन ।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथ्वी सूक्त के इन मंत्रों की अनेक विशेषतायें सूक्त के स्वाध्याय तथा चिन्तन के समय हमारे समक्ष स्फुट होती हैं। एक ओर ये मंत्र धरती माता के निसर्गप्राप्त सौन्दर्य, प्रभाव, महिमा तथा उसके नाना रम्य, विराट् तथा आकर्षक दृश्यों का मनोज्ञ वर्णन करते हैं, तो साथ ही धरती पर निवास करने वाले मनुष्यों के क्रिया - व्यापारों, उनके चरित्रगत माहात्म्य तथा उनकी बौद्धिक एवं आत्मिक उपलब्धियों का भी उल्लेख करते हैं। प्रस्तुत मंत्र में पृथ्वी में व्याप्त उसी गंध तत्त्व का पुनराख्यान करते हुए कहा गया है कि इस धरती माता के वक्ष पर खिले सुन्दर कमल पुष्पों में भी हमें वही गंध दिखाई पड़ती है। कमलों की इस मादक गंध ने सम्पूर्ण वातावरण और परिवेश को सुवासित कर दिया है।

गत मंत्र में गंधर्व और अप्सरा-युवा और युवतियों में जिस गंध की विद्यमानता की बात कही गई उसी शारीरिक और मानसिक सौन्दर्य की तीव्र आकर्षण युक्त गंध ने उन युवा-युवतियों को परस्पर विवाह वंधन में बंधने के लिये प्रेरित किया। मानव समाज में नर-नारी का नैसर्गिक आकर्षण अन्ततः विवाह के पवित्र बंधन के रूप में परिणत होता है। इसी विवाह का विधान सृष्टि के आदिम ग्रन्थ वेदों में भी कहीं प्राकृतिक शक्ति के प्रतीक रूप में, तो अन्यत्र एक सामाजिक विधि के रूप में उल्लिखित हुआ है। ऋग्वेद (१०।८५) तथा अथर्ववेद (१४-१,२) में सूर्या सावित्री और सोम के विवाह का विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है। यहाँ सूर्या और सोम दिव्य प्राकृतिक पदार्थों के प्रतीक तो हैं ही, इस प्रसंग को वैवाहिक विधि को व्याख्यात करने में भी स्वीकार किया गया है। इस प्रकार सूर्या सावित्री और सोम के विवाह में प्रयुक्त ये वेद मंत्र ही

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालान्तर में हमारे गृह्यसूत्रों द्वारा निर्मित विवाह विधि में विनियुक्त हुए और आज सहस्राब्दियाँ व्यतीत हो जाने पर भी विवाह के अवसर पर उन्हें पढा जाता है।

मंत्र में यह कामना प्रकट की गई है कि नव परिणीता वधू और उसका हाथ थामने वाले वर के हृदय और मन में जैसे भाव, विचार, कमनीय आकांक्षायें तथा भावी जीवन के मधुर स्वप्न एवं कल्पनाएं उस अवसर पर उत्पन्न होती हैं, वैसे ही सुखद स्वप्न और मनोरम भाव हम में उत्पन्न हों, ताकि हमारा जीवन भी रम्य, मनोज्ञ तथा सौन्दर्य से आपूरित रहे। पृथ्वी की यह दिव्य गंध समग्र वातावरण को सुवासित तथा इसके निवासियों के तन, मन और प्राणों को आप्यायित करे, यह तभी सम्भव है, जब हम पारस्परिक द्वेष तथा कुत्सा के भाव से पृथक् हों। वेद तो विश्वबंधुत्व, प्राणीमात्र के प्रति मैत्री भाव तथा हिंसा, द्वेष, अत्याचार एवं शोषण से मुक्त समाज की कल्पना करता है अतः इन मंत्रों का पाठक भी बार-बार यही आवृत्ति करता है—मा नो द्विक्षत कश्चन। कोई हम से द्वेष न करे और हम भी किसी से द्वेष न करें।

२५

यस्ते गन्धः पुरुषेषु स्त्रीषु पुंसु भगो रुचि।
यो अश्वेषु वीरेषु यो मृगेषूत हस्तिषु।
कन्यायां वर्चो यद् भूमे तेनास्माँ अपि सं सृज।
मा नो द्विक्षत कश्चन ।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तुत मंत्र में गत दो मंत्रों से 'गंध' की आवृत्ति तो आई ही है भग और रुचि ये दो अन्य शब्द भी विशेष अर्थगर्भित शैली में प्रयुक्त हुए हैं। वेद के पाठक, धरती पुत्र मानव की प्रार्थना है कि हे माता, जो तेरी दिव्य गंध तुझ पर निवास करने वाले स्त्री पुरुषों में है, वह हमें प्राप्त करादे। तेरे कारण ही धरती के इन मानवां ने ऐश्वर्य को प्राप्त किया है तथा इन विशिष्ट गुणों के कारण उनके व्यक्तित्व में एक अद्भुत रुचि-कान्ति आ गई है, वह भी हमें प्राप्त होवे। यही गंध, यही सौभाग्य और ऐसी ही दिव्य कान्ति धरती पर स्वच्छन्द विचरण करने वाले आशुगामी अश्वों, उन घोड़ों पर सवारी करने वाले वीरों तथा विस्तृत अरण्यों में कुलांचें मारते मृगों को भी प्राप्त हुई है। यही शक्ति और स्फूर्ति जहाँ तीव्रवेग से दौड़ने वाले अश्वों और मृगों को धरती ने दी, वहाँ विशालकाय और भव्य हाथी भी धरती माता के इन दिव्य वरदानों से अछूते नहीं रहे। धरती की यह दिव्य गंध, उसका यह दिव्य ऐश्वर्य और सौभाग्य उसकी यह दिव्य कान्ति और आभा इस विशाल धरित्री पर निर्बन्ध विचरण करने वाले अश्व, हस्ति, मृग आदि सभी पशुओं को समान रूप से प्राप्त हैं।

मंत्र के तृतीय पद में हमारी कन्याओं में जिस दिव्यता, पावनता तथा शोभन गुणों की विद्यमानता बताई, उसे निर्दिष्ट करने वाला शब्द वर्च है जो सामान्यतया कान्ति, तेज, प्रकाश तथा प्रभा का द्योतक है। ये भोली-भाली!, निष्पाप कन्यायें, जिन्होंने अभी संसार के पाप, ताप, कल्मष आदि का स्पर्श तक नहीं किया, जिनमें भोलापन, मुग्धा भाव तथा प्रकृति का संस्पर्श सहज विद्यमान है, वे जिस दिव्य गुण से हमें आकृष्ट करती हैं, उसे ही मंत्र में वर्च कहा है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निष्कर्षतः, हमारी मातृभूमि से प्रार्थना है कि हे धरती माता, तू हमें वह दिव्य गंध प्रदान कर, जो यहाँ बसने वाले पुरुषों और स्त्रियों में है। हमें वैसा सौभाग्य और तेज प्रदान कर जैसा इस धरती के प्रतापी पुरुषों में है, यहाँ के हाथी, घोड़ों और मृगों में है। हम उस दिव्य, ओज, तेज और वर्चस के स्वामी होवें जो मुग्धा कन्याओं को निसर्ग से ही प्राप्त है। इन गुणों को हम द्वेष-रहित होकर ग्रहण करें। हम से अन्य कोई हमारे गुणों के कारण द्वेष न करे।

२६

शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः संधृता धृता।
तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः॥

इस धरती को हम माता कहकर क्यों सम्बोधित करते हैं ? क्या धरती मिट्टी, कंकड़, पत्थर की शिलाओं तथा अन्य जड़ वस्तुओं का ही एक समुच्चय नहीं है ? यह एक मौलिक प्रश्न है, जिसका उत्तर हमें प्राप्त करना है। वेद भी इस तथ्य की साक्षी देता है कि धरती में शिलायें हैं, इसमें पत्थर हैं तथा धूल और मिट्टी के कण हैं। वास्तव में तो धरती का प्राकृतिक रूप यही है। फिर हमारे लिये धरती मातृभूमि, पवित्र तथा जननी तुल्य कैसे हो जाती हैं। इसका उत्तर भी वेद ही देता है। जिस धरती को हम धूल, मिट्टी, पत्थर और शिलाओं का ढेर मात्र समझते हैं, वास्तव में जब उसका सम्यक् धारण किया जाता है, उसे एक राष्ट्र का रूप दिया जाता है तो वही जड़ पृथ्वी हमारे लिये पूज-नीय, वंदनीय तथा रक्षणीय हो जाती है। 'सा भूमि संधृता धृता'

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहकर वेद ने स्पष्ट किया कि धरती पर रहने वाले पृथ्वीपुत्रों को एक ही संस्कृति, एक सी विचारधारा और एक ही प्रकार के राष्ट्रीय अनुशासन में बांधने की चेष्टा की जानी चाहिए। जब धरती का सम्यक् धारण और पालन होगा वह कंकड़, मिट्टी और धूल पत्थर का समुदाय समझी जाने वाली जड़ पृथ्वी ही हमारे लिये माता के तुल्य नाना सुखों और ऐश्वर्यों को देने वाली राष्ट्र देवी बन जाएगी।

यह धरती हिरण्यवक्षा है। इसके वक्ष में न जाने कितने बहुमूल्य पदार्थ भरे पड़े हैं। यदि मूल्यवान् धातुओं का विचार करें तो सोना, चांदी, लोहा, तांबा, जस्ता आदि धातुओं के बहु-मूल्य भण्डार हमें धरती से ही प्राप्त होते हैं। आज के वैज्ञानिक युग में सोना और चांदी से भी अधिक महत्त्व के कोयला, मिट्टी का तेल, गैस, पेट्रोल आदि वे ऊर्जा उत्पादक पदार्थ हैं, जिनके कारण हमारे जीवन को सुखी, सम्पन्न तथा आनन्द एवं उल्लास से परिपूर्ण करने वाले नाना उपयोगी साधन उपलब्ध होते हैं। अतः पृथ्वी को हिरण्यवक्षा कहना सर्वथा उपयुक्त ही है।

धातु, कोयला और कच्चे तेल से भी अधिक महत्त्वपूर्ण तो जल और अग्नि आदि वे प्राकृतिक तत्त्व हैं जो पृथ्वी के गर्भ में छिपे पड़े हैं और जिन्हें प्राप्त कर हम विभिन्न लोकोपयोगी कार्यों में प्रयुक्त करते हैं। इस हिरण्यागर्भा पृथ्वी को हम आदर पूर्वक प्रणाम करते हैं। धरती की वंदना में संसार की विभिन्न भाषाओं में कितने काव्यों की सृष्टि हुई है, इसका समग्र विचार करना भी हमारे लिये कठिन है। धरती माता की सर्वाधिक प्राचीन वंदना तो वेदों में ही मिलती है। धरती से जुड़ी मातृभूमि, मातृ-भाषा तथा मातृ संस्कृति को वेदों में यत्र तत्र इड़ा, सरस्वती,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मही (कुत्रचित भारती) इन तीन देवियों के नाम से वर्णित किया गया। पुनः जब पृथ्वी पर अलग-अलग देशों और राष्ट्रों की सीमायें निर्धारित हुई तो वहाँ के नागरिकों ने स्वदेश भक्ति के अनेक गीत गाकर धरती का ही स्तवन किया। पुराणों ने 'गायन्ति देवा किल गीतकानि धन्यास्तु ये भारत भूमि भागे' कह कर भारत माता की, वंदना की तो कवि वंकिमचन्द्र ने वंदे-मातरम् लिखकर उसकी स्तुति की। सहस्रों प्रकार के मातृभूमि वंदना के इन नाना स्वरों में हम भी अपना स्वर मिलाकर उसे प्रणाम करते हैं। ❁

२७

यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा।
पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छा वदामसि ॥

विगत मंत्र में धरती के प्राकृतिक रूप को शिला खण्डों, प्रस्तर खण्डों तथा धूल के कणों से युक्त बताया। प्रस्तुत मंत्र में उसी धरती पर खड़ी वृक्ष वनस्पतियों, लता वीरुधों आदि का उल्लेख हुआ है। यदि धरती पर वृक्ष और लतायें न उगें, इस पर पुष्पों, तृण गुल्मों तथा नाना रसीले फलों से युक्त पेड़-पौधे, वनस्पतियाँ आदि उत्पन्न न हों तो धरती शुष्क, नीरस और वंध्या दिखाई देगी। इस पर ही ऐसे स्थल भी हैं जहाँ मीलों तक लता, वृक्ष की तो बात ही क्या, घास का एक तिनका भी दिखाई नहीं पड़ता। किन्तु मीलों तक विस्तीर्ण इन मरुस्थलों के बीचों बीच हरित तृण युक्त शाद्वल भी आये हैं जहाँ पृथ्वी से निकले सोतों का मधुर जल तथा अभ्रस्पर्शी खजूर जैसे वृक्षों पर लगने वाले

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मधुर फल भी प्राप्त होते हैं। इन्हें नखलिस्तान या Osasis कहा जाता है।

सघन अरण्यों और दिन में भी रात्रि का आभास कराने वाले वृक्ष कुंजों से युक्त यह धरती कैसी सुशोभित है। पृथ्वी के इस नैसर्गिक सौन्दर्य को निहारने के लिये वैसी ही दृष्टि भी चाहिए। नागरिक जीवन की कृत्रिमता से युक्त ज़िन्दगी जीने वाले आज के लोगों को सम्भवत: प्रकृति की यह छटा किंचित् भी रम्य न लगे, किन्तु इसमें दोष किसका है? मंत्र की द्वितीय पंक्ति में पृथ्वी के लिये विश्वधायसम् (सब को धारण करने वाली) पद का प्रयोग हुआ है। यह प्रयोग विशिष्ट अर्थगर्भित है। माता तो अपने पुत्र का धारण पालन करती ही है, किन्तु उससे भी बढ़कर प्राणि मात्र का पालन करने वाली यह धरित्री ही सच्चे अर्थों में विश्वधायसम् है। हिन्दी भाषा में 'धाय' का प्रयोग उस स्त्री के लिये होता है जो किसी अन्य स्त्री की सन्तान की माता बनकर पालन करती है। इसे दाई या Governess कहकर भी सम्बोधित किया गया है, किन्तु धाय तो दूसरी माता ही है। कभी-कभी वह जन्मदात्री माता से भी बढकर प्रेमल हो जाती है। मेवाड़ के इतिहास में पन्ना धाय का उदाहरण प्रसिद्ध है, जिसने अपने पुत्र के प्राणों की बलि देकर मेवाड़ के युवराज उदयसिंह के प्राणों की रक्षा की थी।

इस सम्यक् रूप से शासित धरती को हम भी अपनी धाय मानते हैं और उसके लिये श्रद्धा युक्त प्रणाम प्रस्तुत करते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२८

उदीराणा उतासीनास्तिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः ।
पद्भ्यां दक्षिणसव्याभ्यां मा व्यथिष्महि भूम्याम् ।।

मातृभूमि की सेवा, परिचर्या और उसके सर्वतोमुखी अभ्युत्थान के लिये समय, स्थान और साधनों की कोई सीमा नहीं है। धरती की रक्षा के लिए जैसे रात-दिन सतर्क और सावधान रहना पड़ता है उसी प्रकार इसकी सेवा के लिये भी कोई कोर कसर नहीं रखनी चाहिए। प्रत्येक स्थिति में हमें मातृभूमि का ध्यान रहे। हम चाहे उठें, या बैठें, खड़े रहें या दायें बायें पावों के बल पर चलते रहें, हमसे कोई ऐसा काम न हो जिससे मातृभूमि की हानि हो और स्वदेश को पीड़ा पहुंचे।

प्रायः स्वार्थी लोगों का चिन्तन होता है कि यदि किंचित् स्वार्थ की पूर्ति के लिए देश के सार्वजनिक नियमों का उल्लघंन हो जाये तथा राष्ट्रीय अनुशासन की अवहेलना भी हो जावे तो बुरा क्या है! किन्तु वेद तो कहता है कि किसी भी स्थिति में धरती मां को पीड़ा न पहुंचे, इस बात का ध्यान तो हमें रखना ही है। प्रत्येक देश में ऐसे स्वदेश प्रेमी महापुरुषों की एक दीर्घ परम्परा रही है, जिन्होंने अपने राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य विमुखता का कभी परिचय नहीं दिया। जीवन की कठिन या सरल डगर पर चलते हुए, कठिनाइयों और विपत्तियों का सामना करते हुए सुख-दुख, हानि-लाभ, निंदा स्तुति जैसे द्वन्दों को समान रूप से सहकर भी जिन्होंने मातृभूमि का हित ही किया। अतः इस पृथ्वी के निवासियों को यह प्रतिज्ञा करनी होगी कि हम धरती को किसी भी स्थिति में पीड़ा नहीं पहुंचायेंगे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२६

विमृग्वरीं पृथिवीमा वदामि क्षमां भूमिं ब्रह्मणा वावृधानाम् ।
ऊर्जं पुष्टं बिभ्रतीमन्नभागं घृतं त्वाभि निषीदेम भूमे ॥

इस मंत्र में पृथ्वी को विमृग्वरी, क्षमा और भूमि, इन तीन नामों से सम्बोधित किया गया है। विमृग्वरी के दो अर्थ व्याकरण से प्राप्त होते हैं। प्रथम विशेष रूप से शुद्ध करने वाली होने से यह धरती 'विमृग्वरी' कहलाती है। पृथ्वी तथा उसमें विद्यमान तत्त्वों में वस्तुओं और पदार्थों को पवित्र करने की विशिष्ट शक्ति है। धरती से प्राप्त मिट्टी किसी भी धातु या अन्य पात्रों को शुद्ध और पवित्र करती है। पृथ्वी से ही प्राप्त होने वाले जल में भी शुद्ध करने की क्षमता है। इसी अभिप्राय को ध्यान में रख कर स्मृतिकार मनु ने कहा—अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति। मनुष्य अपने शरीर को शुद्ध करने के लिये जल का प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार वस्त्रादि को स्वच्छ करने के लिये भी जल का उपयोग किया जाता है। धरती पर प्रवाहित होने वायु में भी शुद्धिकरण की अद्भुत शक्ति है। वह अनावश्यक, अपवित्र तथा जुगुप्सा-जनक पदार्थों को अपनी प्रवाह क्षमता के द्वारा उड़ा कर ऐसे स्थान पर ले जाती है, जहाँ से वो पर्यावरण को प्रदूषित नहीं कर सकते। अग्नि में तो अपवित्र और अशुद्ध वस्तुओं को जला कर सम्पूर्ण रूप से भस्मीभूत करने की शक्ति है। इस प्रकार धरती ही मृदा, जल, वायु और अग्नि में शुद्धि करने की शक्ति उत्पन्न करती है।

धरती को अन्वेषणा करने योग्य समझा जाने के कारण भी उसे 'विमृग्वरी' नाम से पुकारा गया। जब से मनुष्य का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस धरती पर प्रादुर्भाव हुआ है, उसी दिन से वह भूमि के प्रत्येक कोने तक पहुंचने, उसके रहस्य को जानने तथा उसके भीतरी स्तर तथा ऊपरी धरातल की भौतिक एवं प्राकृतिक स्थितियों का अन्वेषण करता है। बहुत कुछ जान लेने पर भी अभी तक पृथ्वी के अन्य गुह्य तथा अगोचर रहस्यों को जानना अवशिष्ट ही है।

इसी धरती को मंत्र ने क्षमा कहा। क्षमाशीलता तथा सहन करने की अपार शक्ति तो धरती का विशिष्ट गुण है ही। इसीलिये इसे सर्वंसहा कहा गया। लोक में भी किसी क्षमाशील पुरुष की क्षमा भावना को धरती से ही उपमित किया जाता है। अतः पृथ्वी को क्षमा कहना सार्थक है। इसी धरती को सबको आश्रय देने वाली होने के कारण 'भूमि' नाम से पुकारा गया। मंत्र के प्रथम पाद में मातृभूमि को 'ब्रह्मणा वावृधाना' भी कहा गया है। इस पद का शब्दार्थ है ब्रह्म से बढने वाली। ब्रह्म शब्द अनेकार्थवाची है। ब्रह्म से यदि वेद का अभिप्राय लें, तो कहना पड़ेगा कि वेद के ज्ञान से धरती को नाना प्रकार से प्रवृद्ध किया जाता है। वैदिक ज्ञान के व्यापक प्रचार से जहाँ उस ज्ञान के आधार मनुष्य जाति का हित होगा, वहाँ ऐसे वैदिक विद्वानों को धारण करने वाली धरती का भी गौरव बढेगा। यदि ब्रह्म का अर्थ ब्राह्मण किया जावे, तो इस पद के अर्थ में अधिक सौन्दर्य तथा व्यञ्जना आ जाती है। वैदिक ज्ञान को वितीर्ण करने वाला और आर्यों के समाज का आध्यात्मिक और बौद्धिक नेतृत्व करने वाला ब्राह्मण धरती को उन्नति और प्रगति के जिस सर्वोच्च सोपान पर पहुंचा देगा, उसका विचार करना भी हमारे लिये नितान्त आह्लादप्रद है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विगत काल के ब्रह्मा से लेकर जैमिनि पर्यन्त ब्राह्मण वर्ग तथा पश्चात्वर्ती चाणक्य, शंकर एवं दयानन्द जैसे अनेक विप्रों ने अपने तप, त्याग, ज्ञान, वैराग्य एवं सर्वभूतहित की भावना से लोक कल्याण और धरती की गौरव वृद्धि में अपना योगदान किया, यह सब तो इतिहास की ही वस्तु है। ब्रह्म से परमात्मा का अर्थ लिया जाना तो समीचीन है ही। वस्तुतः अखिल ब्रह्माण्ड का एक अल्प घटक होने के कारण यह धरती भी सृष्टि रचयिता परमात्मा की लीला विलास का केन्द्र बनती है। परमात्मा की पूजा उपासना से अपने आस्तिक भावों को पुष्ट करने वाले इस धरती के निवासी आत्मकल्याण के साथ साथ अखिल धरित्री के उत्थान को भी अपना जीवन लक्ष्य बनाते हैं।

उपर्युक्त नामों और गुणों से संवलित यह धरती माता अपनी सन्तान के लिये जिन पदार्थों को धारण करती है वे हैं—ऊर्जा दायी पदार्थ, पुष्टिकारक द्रव्य, शरीर के धारण में प्रमुख अन्न तथा घृत जैसे चिकनाई वाले पदार्थ। ऐसी महिमा शालिनी महीयसी धरती माता का हम आवाहन करें, उसके गुणों का कीर्तन करें, तथा उसी भूमि पर सदा आश्रय लेते रहें। यदि धरती ही हमें आसरा नहीं देगी तो और कौन हमें सहारा देगा। लोक में अत्यन्त दुखी व्यक्ति जब दुःखों से अत्यन्त पीड़ित हो जाता है, तो वह भी धरती माता से ही आसरा मांगता है और कहता है, हे माता तू मुझे सहारा दे। धरती फट जाये और मैं उसमें समा जाऊं, ताकि इस क्लेश और ताप से त्राण पा सकूं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३०

**शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु यो नः सेदुरप्रिये तं नि दध्मः ।
पवित्रेण पृथिवि मोत्पुनामि ॥**

लोक में जल को जीवन कहा है। शरीर शुद्धि के लिये जल की आवश्यकता है तो उससे भी अधिक शरीर के अंग प्रत्यंगों के सम्यक् संचालन तथा तृषा-निवृत्ति के लिये जल की अनिवार्यता स्वयंसिद्ध है। धरती के जिन भागों में जल का प्रायः अभाव रहता है वहाँ के मनुष्यों और अन्य प्राणियों का जीवन भार-स्वरूप बन जाता है। मरुस्थल के निवासियों के जीवन में व्याप्त कष्टों की कल्पना करना कठिन नहीं है। इनसे भिन्न जिन भूमि-भागों में जल की उपलब्धि प्रचुर मात्रा में होती है, वहाँ के लोगों का जीवन अपेक्षाकृत सुखपूर्वक व्यतीत होता है। किसी कवि ने मालवा की धरती की प्रशंसा करते हुए कहा 'डग डग रोटी पग पग नीर।' अर्थात् मालव भूमि प्रशंसनीय है जहाँ कदम-कदम पर अन्न और मधुर जल पथिक को उपलब्ध रहता है।

मातृभूमि का भक्त कहता है कि हे मातः हम चाहते हैं कि शुद्ध जल जो हमारे शरीर के लिए आवश्यक है, वह निरन्तर प्रवाहित होता रहे। जल स्रोतों में कभी कमी न आवे। उसकी एक अन्य प्रार्थना है कि नाशकारी और अप्रिय व्यवहारों को हम स्वयं से दूर रक्खें। हमारा प्रत्येक व्यवहार और आचरण हित और मंगलकारी हो। अन्यायाचरण हम कभी न करें। जब राष्ट्रवासियों का आचरण पवित्र होगा तो उससे धरती की पवित्रता एवं गरिमा भी बढ़ेगी। अन्यथा तो पापाचरण से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धरती पर भी पापों की ही वृद्धि होती है। पृथ्वी को पवित्र रखने के लिये पृथ्वी के निवासियों का पवित्र होना आवश्यक है।

३१

यास्ते प्राचीः प्रदिशो या उदीचीर्यास्ते भूमे अधरा द्याश्च पश्चात् ।
स्योनास्ता मह्यं चरते भवन्तु मा नि पप्तं भुवने शिश्रियाणः ।।

धरती पर रहने वाले मनुष्यों तथा उनके शासकों का एक महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य हो जाता है कि वे इस पृथ्वी की चारों दिशाओं को सर्वथा भय मुक्त रक्खें। नागरिकों के चरित्र का इस प्रकार विकास हो, ताकि वे स्वयं भी निर्भीक बनें तथा अन्यों के लिये भी भय का कारण न बनें। किन्तु नागरिकों से भी बढ़कर राज्य की चारों दिशाओं को मनुष्य मात्र के लिये सुखपूर्वक विचरण करने योग्य बनाने का जिम्मा शासक राजा का है। पृथ्वी सूक्त के इस मंत्र में प्राची, उदीची, दक्षिण (अधर) और पश्चिम (पश्चात्) चारों दिशाओं में विचरण करने वालों के लिये ये दिशायें सुखदायक हों, यह कामना की गई है। अन्यत्र भी वेद में 'सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु' कहकर दिशा प्रदिशाओं को मनुष्य के लिए मित्रवत् शुभेच्छु बनने की बात आई है। धरती की चारों दिशाओं में फैले राजपथ चाहे वे भूतल परिवहन के लिये उपयुक्त हों या जल एवं वायु मार्ग पर जाने वाले यानों के लिये निर्मित हों, धरती पुत्रों के लिये सुखद एवं निष्कण्टक रहें।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चोर, डाकू, उच्चकों तथा लुटेरों से इन पथों की रक्षा की जानी चाहिए। समास रूप में मंत्र द्रष्टा की कामना है कि धरती के इस प्रदेश में आश्रय लेने वाला कोई भी व्यक्ति अपने उन्नति पथ से पतित न हो, अपितु वह लक्ष्य प्राप्ति की ओर अविचल भाव से बढ़ता चला जावे।

३२

मा नः पश्चान्मा पुरस्तान्नुदिष्ठा मोत्तरादधरादुत। स्वस्ति भूमे नो भव मा विदन्परिपन्थिनो वरीयो यावया वधम्॥

धरती पर निवास करने वाले उस भावुक नागरिक की एक अन्य कामना यह है कि उसको सब दिशाओं से कल्याण, मंगल और सुख की ही प्राप्ति हो। कोई दिशा उसे पीड़ा न पहुंचाये। इसलिये उसने पुनः पश्चिम (पश्चात्), पुरस्तात् (पूर्व), उत्तरात् (उत्तर) तथा अधरात् (दक्षिण) दिशाओं का नामोल्लेख पूर्वक करके कहा कि ये दिशायें उसके लिये निर्विघ्न हों। वह बिना किसी बाधा के, धरती के एक छोर से दूसरे छोर तक आता जाता रहे। उसका यह परिक्रमण सर्वथा निर्बाध हो। स्वस्ति की कामना भी हम माता पृथ्वी से ही करते हैं—वह हमारे लिये कल्याणकारी बने।

पृथ्वी पर बने राजमार्गों को निर्विघ्न और निष्कण्टक बनाने के लिये आवश्यक है कि वे पथिकों के रास्तों को रोककर उन्हें पीड़ा पहुंचाने वाले तस्करों और दस्युओं से रहित हों।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई भी यात्री अपनी यात्रा में ऐसे लुटेरे दस्युओं और आततायियों से न टकराये। मंत्र का अन्त्य भाग इसी विचार को किंचित् विस्तार देता हुआ कहता है कि शस्त्रों से प्रहार किये जाने की हिंसाजनक घटनाएं हमसे दूर रहें। इस प्रकार यात्रियों की यात्रा को सुगम और निर्विघ्न करने का दायित्व धराधीश राजा का है।

३३

यावत्तेऽभि विपश्यामि भूमे सूर्येण मेदिना।
तावन्मे चक्षुर्मा मेष्टोत्तरामुत्तरां समाम् ।।

धरती पर निवास करने वाले सभी प्राणियों का शारीरिक स्वास्थ्य भी पृथ्वी माता की उदार कृपा तथा तज्जन्य स्वास्थ्य-प्रदायक पदार्थों के सम्यक् उपयोग पर ही निर्भर होता है। हमारे शरीर की प्रत्येक इन्द्रिय का धरती से उत्पन्न पदार्थों से किसी न किसी प्रकार का आधाराधेय भाव ज्ञात होता है। धरती पर चलने वाली वायु के प्रवाह को हम अपनी त्वगिन्द्रिय से अनुभव करते हैं, तो धरती से उत्पन्न पुष्पों की सुगन्ध को अपनी घ्राणेन्द्रिय से सूंघते हैं। धरती से ही उत्पन्न जल, अन्न-फलादि का स्वाद हम अपनी जिह्वा से अनुभव करते हैं। प्रस्तुत मंत्र में मानवी नेत्रों को अन्य इन्द्रियों का उपलक्षण रूप मान कर कहा गया है कि हे पृथ्वी माता, तुझे प्रकाशित करने वाला सूर्य ही तो मुझे भी दृष्टि शक्ति प्रदान करता है। सूर्य के प्रकाश की सहायता से ही हमारे नेत्र वाह्य पदार्थों को देखने में सक्षम होते हैं। अतः जब तक सूर्य से मुझे दर्शन शक्ति प्राप्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती रहे, तब तक मेरी चक्षु इन्द्रिय भी सर्वथा स्वस्थ रहे ताकि जीवन के भावी वर्षों में मैं संसार के पदार्थों को यथावत् देखता रहूं। उपलक्षण से साधक की कामना है कि धरती हम पर ऐसा अनुग्रह करे ताकि हमारी सभी ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ स्वस्थ एवं बलवान हों तथा स्व विषयों को प्राप्त करती रहें।

३४

यच्छयानः पर्यावर्ते दक्षिणं सव्यमभि भूमे पार्श्वम् ।
उत्तानास्त्वा प्रतीचीं यत्पृष्टीभिरधिशेमहे ।
मा हिंसीस्तत्र नो भूमे सर्वस्य प्रतिशीवरि ॥

धरती से बढकर सुखपूर्वक सोने की और कौन सी शय्या होगी। काष्ठ या अन्य धातुओं से निर्मित पर्यंक, चाहे कितने ही विस्तीर्ण, प्रशस्त तथा आह्लादप्रद क्यों न हों, धरती पर सोने का अपना निराला आनन्द है। राजस्थानी की एक लोकोक्ति में कहा है—'जद धरती माथे सोवणो तो सांकड़ भीड़ क्यूं भुगतणी।' अर्थात् जब धरती पर ही लेटना है तो अंग-प्रत्यंग को सिकोड़ने की क्या आवश्यकता। आप निःसंकोच हाथ-पांव फैला कर धरती को अपनी शय्या बनायें। मंत्र का अभिप्राय भी यही है कि धरती पर सोते समय हम दाहिने या बांयें करवट लें, अथवा ऊपर नीचे अपने शरीर को मोड़ें, यह धरती हमें किसी भी अवस्था या स्थिति में पीड़ित नहीं करती।

मंत्र में धरती को सर्वस्य प्रतिशीवरि अर्थात् सबको सुलाने-वाली कहा है। जिस प्रकार माता की गोद में आकर उसकी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्तान सुख की नींद सोती है, उसी प्रकार धरती माता की वात्सल्यमयी क्रोड़ में आबाल वृद्ध वनिता नर-नारी ही नहीं, चींटी से हाथी पर्यन्त सभी प्राणी सुखपूर्वक शयन करते हैं। ऐसी धरती माता अपने पुत्र - पुत्रियों को कभी किसी भी स्थिति में पीड़ा न पहुंचायें, यही हमारी प्रार्थना है।

३५

यत्ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम् ।।

धरती विषयक सूक्ष्म से सूक्ष्म बात को कहने तथा एतद्-विषयक कर्त्तव्यों का विधान करने में अथर्ववेद के इस सूक्त में न तो संकोच किया गया है और न शब्दों की ही कृपणता दिखाई है। मनुष्य धरती को खोदता है और उस हल की फाल से कर्षित भूमि में अन्न के दाने बोता है। समय आने पर वे ही अन्न के बीज उग जाते हैं और फसलें लहलहा उठती हैं। अतः मन्त्र के पाठक पृथ्वी पुत्र की यह प्रार्थना सर्वथा उचित ही है कि हे माता, हम अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिये जहाँ-जहाँ तुझे खोदें वहाँ हमें अविलम्ब फल प्राप्ति हो और हमारा कृषि कर्म भरपूर अन्न देने वाला हो। स्वर्ण, रजत, लोहा आदि उपयोगी धातुओं को प्राप्त करने के लिये भी धरती को खोदा जाता है। यदि धातुओं के अस्तित्व के पूर्वानुमान के आधार यह खनन कार्य किया जाता है तब तो तुरन्त वे इच्छित धातुएं हमें प्राप्त भी हो जाती हैं।

किन्तु धरती को कृषि के लिये अथवा धातु, गैस, तेल आदि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की प्राप्ति के लिये खोदते समय भी एक बात का ध्यान अवश्य रखना है। यह खनन व्यर्थ का खनन न हो और इससे पृथ्वी का ऐसा मर्मस्थल न खुद जावे, जिसकी हमारे लिये तो कोई उपयोगिता भी न हो और धरती के वक्ष पर एक व्यर्थ का छिद्र हो जाये। ऐसा करके हम पृथ्वी की शोभा और सौन्दर्य को नष्ट न करें। इस मंत्र में भी पृथ्वी के लिये विमृग्वरि विशेषण ही प्रयुक्त हुआ है। इसके अर्थ के लिये मंत्र संख्या २९ द्रष्टव्य है।

३६

ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धेमन्तः शिशिरो वसन्तः।
ऋतवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम्॥

धरती पर वर्ष भर में पूरा होने वाला ऋतु चक्र भी प्रकृति का एक निराला उपहार है। कमोबेश ये ऋतुयें धरती के सभी भागों में क्रम से आती हैं, किन्तु भारत में तो इनका आगमन व्यवस्थित और क्रमशः होता ही है। ग्रीष्म के पश्चात् वर्षा, पुनः शरद, हेमन्त, शिशिर और वसन्त के आगमन के साथ षड्-ऋतुओं का यह वार्षिक चक्र पूरा होता है। मंत्र में यह भावना प्रकट की गई है कि मनुष्य जीवन के लिये इन ऋतुओं का भी महत्त्व है अतः अनेक वर्षों तक ऋतुओं का यह क्रमशः आवागमन नियत व्यवस्था के अनुसार चलता रहे।

आयुर्वेद में पृथक्-पृथक् ऋतुओं के वातावरण, शीत, ऊष्णता आदि की न्यूनाधिकता, वर्षा के कारण होने वाले विविध परिवर्तन आदि को ध्यान में रखकर मनुष्यों को अपनी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋतुचर्या निर्धारित करने की बात कही गई है। प्रत्येक ऋतु में मनुष्य का भोजन, आहार विहार, दिनचर्या आदि कैसी रहे, इन सबका विस्तृत विचार आयुर्वेद के ग्रन्थों में मिलता है। पृथ्वी-सूक्त का यह मंत्र इसी ऋतु क्रम तथा तदनुकूल जीवन यापन करने का विधान करता है। वेद के ऋतु विधान से प्रेरणा लेकर परवर्ती संस्कृत कवियों ने अपने काव्य ग्रन्थों में षड् ऋतुओं के प्राकृतिक सौन्दर्य का मनोहारी वर्णन किया है।

३७

याप सर्पं विजमाना विमृग्वरी यस्यामासन्नग्नयो ये अप्स्वन्तः।
परा दस्यून्ददती देवपीयूनिन्द्रं वृणाना पृथिवी न वृत्रम्।
शक्राय दध्रे वृषभाय वृष्णे॥

इस सूक्त के अनेक मंत्रों में धरती के लिये 'विमृग्वरि' शब्द का प्रयोग हुआ है। पूर्व में आये ऐसे मंत्रों में हम विमृग्वरि के अर्थों पर विचार कर चुके हैं। यह पृथ्वी विमृग्वरि है, क्योंकि यह शुद्ध करने वाली तथा अन्वेषण करने योग्य है। इस पृथ्वी से हमारी जो आशायें और आकाक्षायें हैं, उन्हें ही सूक्त के विभिन्न मंत्रों में वर्णित किया गया है। प्रथम तो यह कहा गया कि यह धरती सर्प की तरह कुटिल गति वाले पुरुषों से दूर रहती है। मंत्र के इस कथन का अभिप्राय यह है कि राष्ट्र के शासक राजा और उसकी प्रजा को मिलजुल कर ऐसा प्रयास करना चाहिए ताकि दुष्ट, कुटिल एवं क्रूर प्रकृति के व्यक्ति शक्ति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त न कर सकें। यदि सारी धरती ही इस प्रकार की कुटिल चाल चलने वालों से रहित हो जावे, तो उससे बढ़कर मानव सभ्यता की और क्या उपलब्धि होगी ?

जिस प्रकार हम सर्प की सी कुटिल गति वालों को अपने से दूर रखते हैं, उसी प्रकार देवपीयु, दैवी प्रकृति वाले साधु पुरुषों को पीड़ित करने वाले अत्याचारियों को भी स्वयं से पृथक् रखते हैं। दुष्टों के दमन की यह शक्ति हमें अग्नि तुल्य उस ओजस्वी प्रवृत्ति से प्राप्त होती है जो प्रत्येक मनुष्य में मूलतः निहित है। उधर राष्ट्र की भौतिक अभिवृद्धि के लिये उस विद्युत रूपी अग्नि की भी आवश्यकता होती है जो जलों से उत्पन्न होती है। पानी के प्रवाहों को रोककर और उसे ऊंचाई से गिराकर जो जल-विद्युत उत्पन्न की जाती है उसका स्पष्ट संकेत इस मंत्र के 'अप्सु अन्तः' तथा 'अग्नय' इन पदों से मिलता है।

अनेक वेद मंत्रों में इन्द्र वृत्र के युद्धों का उल्लेख मिलता है। प्रस्तुत मंत्र में भी इन्द्र और वृत्र की चर्चा आई है। यहाँ कहा गया है कि यह धरती इन्द्र का तो वरण करती है किन्तु वृत्र को दूर रखती है। स्पष्ट है कि यहाँ इन्द्र दैवी प्रवृत्ति का तथा वृत्र आसुरी प्रवृत्ति का प्रतीक है। राष्ट्रवासी दैवी वृत्ति से संयुक्त हों तथा वृत्र रूपी दुष्ट प्रकृति से स्वयं को पृथक् रक्खें। धरती भी इन्द्र का ही वरण करती है। इस प्रसंग में इन्द्र सम्राट् का वाचक होगा जब कि इन्द्र का शत्रु वृत्र उन्नति के अवरोधक, राष्ट्र का अहित चिन्तन करने वाले उन लोगों का प्रतीक माना जायेगा जिनकी कार्य प्रवृत्तियाँ राष्ट्र की सुरक्षा और प्रगति के लिए घातक होती हैं। स्पष्ट है कि धरती माता को तो इन्द्र ही अभीष्ट है न कि वृत्र।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्रान्त में धरती को शक्र और वृषभ के लिये धारण करने योग्य बताया गया है। शक्र विभिन्न कार्य करने में समर्थ पुरुष का वाचक है तो वृषभ बलवान और शक्तिशाली पुरुष का प्रतीक है। वस्तुत: यह धरती पुरुषार्थी और समर्थ पुरुषों द्वारा ही शासित होती है। इसी वैदिक तत्त्व को ध्यान में रखकर परवर्ती संस्कृत लोकोक्ति प्रसिद्ध हुई-'वीर भोग्या वसुन्धरा।' पृथ्वी वीरों द्वारा भोगी जाती है।

३८

यस्यां सदोहविर्धाने यूपो यस्यां निमीयते ।
ब्रह्माणो यस्यामर्चन्त्यृग्भिः साम्ना यजुर्विदः ।
युज्यन्ते यस्यामृत्विजः सोममिन्द्राय पातवे ।।

पृथ्वी सूक्त के अब तक के मंत्रों में प्रमुख रूप से धरती के उस स्वरूप का वर्णन किया गया जो उसकी प्राकृतिक छवि को अंकित करता है। इन मंत्रों में धरती के पार्थिव तत्त्वों-मिट्टी, पत्थर, शिला आदि, जल, वनस्पति, पर्वत, नदियाँ, भिन्न-भिन्न ऋतुओं आदि की चर्चा हुई। किन्तु धरती का वास्तविक रूप तो उस पर फैली वह मानवी सभ्यता और संस्कृति है, जिसने मनुष्य के आविर्भाव काल से ही मानव की उत्पत्ति के साथ ही जन्म लिया और जो युग युगान्तर से धरती के निवासी मनुष्य को सभ्य और सुसंस्कृत बनाती रही है।

धरती की इस सबसे प्राचीन संस्कृति को यदि यज्ञ सस्कृति का नाम दिया जाये तो अनुपयुक्त नहीं होगा। प्रस्तुत मंत्र

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में इसी याज्ञिक संस्कृति के कुछ रम्य चित्र प्रस्तुत किये गये हैं। प्रथम तो याज्ञिक संस्कृति के प्रतीक रूप सद, हविर्धान और यूपों की चर्चा यहाँ आई है। 'सद' मनुष्य के निवास के योग्य गृह हैं। हवि रूपी अन्न और यज्ञ में हुत की जाने वाली अन्य सामग्रियों के भण्डार वे कोठे हैं जिन्हें हविर्धान कहा गया है। प्राचीन काल के आर्यों के घरों में विद्वान् ऋत्विजों, यज्ञ कर्म में कुशल ब्रह्मादि आचार्यों तथा यज्ञ करने कराने वाले यजमान एवं उसके परिवार के सदस्यों के निवास के योग्य विशाल तथा प्रशस्त गृह बने रहते थे, जो 'सद' शब्द वाच्य थे। पुनः इन याज्ञिक गृहस्थों के घरों में गेंहू, जौ, चावल, तिल आदि उन अन्नों के वृहद् भण्डार भरे रहते थे जो यथा विधि यज्ञों में आहुति के रूप में तो प्रयुक्त होते ही थे, यज्ञान्त के सामूहिक भोजों में विविध व्यञ्जनों के निर्माण में भी जिनका उपयोग होता था। इसी पृथ्वी पर यज्ञ करने वालों ने यज्ञ कर्म की सूचना देने वाले विविध स्तम्भों और सूचना पट्टों का भी निर्माण किया था, जिन्हें वेद तथा याज्ञिक परिभाषा में यूप कहा जाता है। कालान्तर में जब तांत्रिक प्रभाव से यज्ञों में पशुहिंसा का प्रचलन हुआ, तो यज्ञीय पशुओं को बांधने के लिये जो खूंटे गाड़े जाते थे उन्हें भी यूप का ही नाम दिया गया। वस्तुतः यूप तो सूचनार्थ खड़े किये गये बड़े-बड़े स्तम्भ ही थे।

जब यज्ञ की सारी तैयारियाँ हो जातीं, तो यज्ञ के लिये वेदी का निर्माण होता। धरती पर निर्मित इस वेदी में ब्राह्मण लोग जो वेदों पर आधारित यज्ञ कर्म में कुशल थे, वे ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद-इस वेदत्रयी के मंत्र समुदाय का उच्चारण करते हुए परमात्मा की यज्ञ के माध्यम से अर्चना करते थे। संख्या में तो वेद चार ही हैं, किन्तु उनमें संगृहीत मंत्रों को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋचा (छन्दोबद्ध मंत्र), यजुः (गद्यात्मक मंत्र) तथा साम (गानात्मक मंत्र) इस प्रकार त्रिधा विभक्त किया गया है। यज्ञ कर्म में कुशल व्यक्ति की अध्वर्यु संज्ञा है जो कर्मकाण्डात्मक यजुर्वेद का विशिष्ट विद्वान् होता है। आपाततः तो यज्ञ के द्वारा देव पूजा, संगतिकरण तथा दान आदि दिव्य कर्म किये जाते हैं, किन्तु 'यज्ञनयज्ञमयजन्त देवाः' की श्रुति के अनुसार वास्तव में यज्ञों से भी यजनशील परमात्मा की ही उपासना की जाती है। इसीलिये प्रस्तुत मंत्र में यजुर्विद ब्राह्मणों के द्वारा ऋग्वेद और सामवेद के मंत्रों को बोल कर परमात्मा के अर्चन की बात कही गई है।

प्राचीन यज्ञों में सोम नामक औषधि को घोट, पीस तथा छान कर उसे पेय द्रव्य के रूप में बदलने तथा यज्ञ में आगत इन्द्रादि देवों द्वारा उस सोमरस को पीने के उल्लेख भी अनेकत्र आये हैं। सोमवल्ली नामक औषधि (लता) और उससे निचोड़े हुए सोमरस के पान को अभिधार्थ से भिन्न व्यंग्यार्थ में भी लिया गया है। उपासना की दृष्टि से सोम भक्ति या उपासना का वाचक है और इन्द्र तो परमात्मा ही है, जिसके लिये भक्त अपने हृदयस्थल में ही भक्ति रूपी सोम को तैयार करता है और अपने आराध्य के लिये प्रस्तुत करता है। इस भक्ति रूपी सोम को स्वयं उपासक भी पीता है और सांसारिक बंधनों से मुक्त होकर परमात्मा के अमर धाम को प्राप्त हो जाता है। वेद में इसी भाव को इस प्रकार अभिव्यक्त किया गया है– 'अपाम' सोम अमृता अभूम अगन्म ज्योति आदि उपासक ने भक्ति रूपी सोम का पान किया, जिससे वह जरामरण के बंधनों से मुक्त होकर अमर हो गया। इस मोक्ष दशा में उसने परमात्मा के दिव्य प्रकाश (ज्योति) का साक्षात् किया और मोक्ष गामी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य देवों को भी देखा जो उससे पूर्व परमात्मा के साक्षात्कार से मुक्त हो गये थे। यदि मंत्र में प्रयुक्त सोम और इन्द्र के आधिभौतिक अर्थ करें, तो इन्द्र सम्राट् के लिये प्रयुक्त माना जायगा और सोम उन पदार्थों का वाचक होगा जो धन और ऐश्वर्य के सूचक हैं। ये पदार्थ यद्यपि प्रजाजनों द्वारा ही उपार्जित होते हैं, किन्तु उनका कुछ अंश राजा को कर रूप में दिया जाता है। राजा भी पुनः उसी द्रव्य को प्रजा के हितार्थ व्यय कर देता है।

३९

यस्यां पूर्वे भूतकृत ऋषयो गा उदानृचुः।
सप्त सत्रेण वेधसो यज्ञेन तपसा सह ॥

राष्ट्रीय संस्कृति के प्रतीक यज्ञों और उनको सम्पन्न करने वाले ऋषियों का इस मंत्र में स्पष्ट उल्लेख हुआ है। यज्ञ कर्म में कुशल ये ऋषि वे हैं, जिन्होंने हमारे अतीत का निर्माण किया है। भूतकालीन कृत्यों को करने वाले ये भूत कृत ऋषि वस्तुतः आने वाले युगों तक हमारे लिये आदर्श के रूप में सदा उपस्थित रहेंगे। वेद में अनित्य इतिहास का वर्णन नहीं होता, अतः यहाँ अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा, ब्रह्मा, वसिष्ठ, विश्वामित्र, अत्रि, भारद्वाज, व्यास, जैमिनि आदि किसी ऋषि विशेष का नामोल्लेख नहीं है। इन अतीत के निर्माता ऋषियों को एक अन्य विशेषण वेधसः से भी सम्बोधित किया गया है। सृष्टि निर्माता परमात्मा तो वेधस है ही, किन्तु विविध प्रकार के रचना कर्म में कुशल, विविध ज्ञान विज्ञान कर्म प्रवीण ऋषि भी इसी वेधस संज्ञा से अभिहित होते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्हीं पवित्र चरित्र और दिव्य कर्म वाले ऋषियों ने वेदों की उन पावन ऋचाओं रूपी वाणी का गान किया था जो यज्ञों में उच्चरित की जाती है। वैदिक साहित्य में 'सप्त सत्र' और 'सप्त होता' इन पारिभाषिक शब्दों का बहुधा प्रयोग हुआ है। सामान्यतया जो यज्ञ होते थे, वे तीन सत्रों या सवनों में समाप्त होते थे। इन्हें प्रातः, माध्यन्दिन और सायं सवन कहा जाता था। किन्तु सप्त सत्रों का संचालन करने वाले सप्त होताओं (पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ, मन तथा आत्मा) का भी वेद में उल्लेख हुआ है।

हमारे इन पूर्वज तत्त्ववेत्ता ऋषियों ने वैदिक मंत्रों का जो गान किया, वह केवल शाब्दिक उच्चारण मात्र ही नहीं था। परमात्मा की इस कल्याणी वाणी के उच्चारण की क्रिया में उन ऋषियों की यज्ञ रूपा परोपकार वृत्ति, तपस्वी जीवन की पूत साधना तथा सप्तहोतात्मक और सप्त सत्रों में विस्तृत यज्ञ की पवित्र भावना भी रहती थी। अतः इस मंत्रोच्चारण रूपी याज्ञिक क्रिया की विशिष्टता को जानना आवश्यक है।

महर्षि-पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान
तिथी.........
पु०सं०...1893
भारती पुस्तकालय

४०

सा नो भूमिरादिशतु यद्धनं कामयामहे।
भगो अनुप्रयुङ्क्तामिन्द्र एतु पुरोगवः॥

जिस धरती पर उपर्युक्त ऋचाओं में वर्णित जनहित के प्रतीक यज्ञ किये जाते हैं, वह धरती पवित्र है, धन्य है। इन यज्ञों के द्वारा धरती में ऐसी शक्ति उत्पन्न होती है जिससे वह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यजमानों की सम्पूर्ण कामनायें पूरी करने में समर्थ बन जाती है। इसी अभिप्राय को बताने के लिये उपासक ने भूमि माता से कहा कि आप उन समग्र धनैश्वर्यों को हमें प्राप्त करायें जिनकी हम कामना करते हैं। वस्तुतः पुरुषार्थ और अध्यवसाय के बल पर किये जाने वाले कामों का फल उत्तम कोटि के धन और ऐश्वर्य की प्राप्ति के रूप में मिलता है और यह धरती ही इन धनों का आदि स्रोत है।

धन के साथ ही धरती का पुत्र मनुष्य मातृभूमि से उस ऐश्वर्य की भी कामना करता है जिसके लिये मंत्र में 'भग' पद आया है। कीर्ति, विभूति, सम्पदा आदि सभी भग के अन्तर्गत आते हैं। हम उन कामों को करें जो हमारे लिये ऐश्वर्य प्रदान करनें वाले हों। 'वयं स्याम पतयो रयीणाम्' आदि श्रुतियाँ भी इसी रयि-धन की कामना करती हैं। यह धन और ऐश्वर्य हमें तब प्राप्त होगा, जब हम इन्द्र रूपी सम्राट् और परमात्मा को अपना नेता मानकर उसके अनुगामी बनें और उसी के बताये रास्ते पर चलते रहें। सांसारिक जीवन में सम्राट् (शासक) हमारा अनुशास्ता होता है किन्तु पारमार्थिक लक्ष्य की प्राप्ति के लिये इन्द्र रूपी परमात्मा को ही हमें अपना पथदर्शक बनाना होगा। वह अग्नि देव ही हमें सुपथ की ओर ले जायेगा—अग्ने नय सुपथा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४१

यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलबाः ।
युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः ।
सा नो भूमिः प्रणुदतां सपत्नानसपत्नं मा पृथिवी कृणोतु ।।

धरती पर मानवी सभ्यता के अनेक और विविध रूप वाले आयाम हैं। मानव अपने हार्दिक उल्लास और आमोद के भावों को व्यक्त करने के लिये कलाओं का सहारा लेता है। विविध बोलियों को बोलने वाले ये धरती माता के पुत्र अपने हर्ष और उल्लास को गायन और नृत्य आदि के द्वारा प्रकट करते हैं। जिस समय धरती के इस मंच पर गायन और नृत्य के आकर्षक कार्यक्रम प्रस्तुत किये जाते हैं, तब एक अद्भुत समां बंध जाता है। किन्तु इससे हम यह निष्कर्ष न निकालें कि धरती के इन निवासियों का सारा जीवन केवल नृत्य गीत आदि में ही व्यतीत होता है।

कभी युद्ध की स्थिति भी उत्पन्न होती है। उस समय राष्ट्र की रक्षा में तत्पर यही लोग शत्रु का पराभव करने के लिये अस्त्र शस्त्रों से लैस होकर रणांगण में कूद पड़ते हैं। उस समय वीरों की ललकार और परस्पर की स्पर्धापूर्ण उक्तियों से सारा वातावरण कोलाहल पूर्ण हो जाता है। उधर युद्ध के उत्साह का वर्धन करने वाले दुदुंभि आदि मारू बाजे बजने लगते हैं। धरती पर ही युद्ध का यह वातावरण कायरों के हृदयों में भी एक क्षण के लिये उत्साह का संचार कर देता है।

शत्रुओं को परास्त करने तथा उनकी राष्ट्र विघातक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चालों को नष्ट करने की प्रेरणा भी देशभक्त वीरों को धरती माता से ही प्राप्त होती है। इसी अभिप्राय से वह धरती से प्रार्थना करता है—हे भूमि माता, तू हमारे शत्रुओं को नष्ट कर तथा हमें शत्रुओं से सर्वथा रहित कर दे। सूक्त के इन मंत्रों से धरती की रक्षा के लिये किये जाने वाले प्रयत्नों की जानकारी मिलती है। शान्ति काल और युद्ध काल में इस धरती के वातावरण में जो अन्तर रहता है, उसे भी मंत्र ने स्पष्ट किया है।

४२

यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्च कृष्टयः ।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे ॥

धरती का वर्षा से अटूट सम्बन्ध है। वर्षा से धरती हरी-भरी हो जाती है तथा विभिन्न अन्नों की फसलें लहलहा उठती हैं। इसी धरती में नाना प्रकार के अन्न उत्पन्न होते हैं। इन अन्नों में प्रमुख हैं चावल और जौ। यों तो वेदों में अन्यत्र विविध प्रकार के खाद्यान्नों का विवरण मिलता है, किन्तु इनमें प्रधान चावल तथा जौ हैं। जौ प्रकृति से ही शीतल होता है तथा चावल को देवधान्य कहा गया है। इसी धरती पर चार वर्णों तथा इनसे भिन्न बनवासी जन ये पांचों वर्णों के लोग परस्पर सौमनस्य तथा सौहार्दपूर्ण वातावरण में निवास करते हैं। 'पञ्च कृष्टयः' में आया 'कृष्टि' शब्द कृषि का भी वाचक है। विविध प्रकार के कृषि कर्म भी इस धरती पर ही होते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंत्र के द्वितीय पाद में उस भूमि को नमस्कार किया गया है जो पर्जन्य (मेघ) से पालित होने के कारण पर्जन्य पत्नी है और घनघोर वृष्टि से गीली हो जाने के कारण जिसे मंत्र में 'वर्षमेदसे' कह कर सम्बोधित किया गया। धरती को हरी-भरी और सुशोभन रखने में वर्षा का जो महत्त्व है, उसे इस मंत्र में विशेष रूप से रेखांकित किया गया है।

४३

यस्या पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्या विकुर्वते ।
प्रजापतिः पृथिवीं विश्वगर्भामाशामाशां रण्यां नः कृणोतु ॥

धरती पर नागरी सभ्यता के दर्शन करने के लिये हमें बड़े-बड़े पुरों और नगरों में जाना पड़ेगा। इसी पृथ्वी पर लाखों-करोड़ों की जनसंख्या वाले नगरों का निर्माण तथा विकास देव-पुरुषों द्वारा किया गया है। विद्वान् लोग ही देव हैं और वे ही नगरों के निर्माण तथा विस्तार की योजनायें बनाते हैं। नगर विकास के इन देवनिर्मित कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने में जिन शिल्पियों, कारीगरों और अभियन्ताओं की आवश्यकता होती है, वे भी देव ही हैं। अतः मंत्र में इन पुरों को देवकृत कहा गया।

उधर नगरों से दूर ग्रामों में एक अन्य प्रकार की सभ्यता का विकास हुआ है, जो मुख्यतया कृषि पर ही आधारित है और खेत ही जिसके केन्द्र हैं। इन खेतों में भी कृषकगण नाना प्रकार के कार्य करते दिखाई देते हैं। कहीं खेतों को हल चलाकर जोता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जा रहा है तो कहीं बीजों की बुवाई का काम हो रहा है। अन्यत्र फसलों की सिंचाई, कटाई आदि के कार्यों में ये लोग व्यस्त हैं। नागरिक और ग्राम्य जीवन का आधार यह धरती वस्तुतः विश्व-गर्भा-- सब कुछ को अपने आश्रय में रखने वाली है। हम उससे प्रार्थना करते हैं कि वह अपनी प्रत्येक दिशा को हमारे लिये रमणीय बनाये। वस्तुतः पृथ्वी की प्रत्येक दिशा को सुन्दर और रम्य बनाना प्रजापति परमात्मा अथवा सम्राट् का ही कार्य है। अतः यह प्रार्थना भी उसी के प्रति है।

४४

निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे।
वसूनि नो वसुदा रासमाना देवी दधातु सुमनस्यमाना ॥

धरती से हमें जो कुछ प्राप्त होता है, उसके विभिन्न स्रोत एवं साधन हैं। विविध प्रकार के अन्न और औषधियाँ धरती के गर्भ से ही उत्पन्न होती हैं। उधर धरती के गर्भ में निहित स्वर्ण, रजत आदि मूल्यवान धातुयें खानों को खोद कर प्राप्त किये जाते हैं। वस्तुतः पृथ्वी की इन गहन गुफाओं में अनेक प्रकार के खजाने भरे पड़े हैं, जिन्हें मनुष्य अवसर पाकर निकालता है। इस रत्नधात्री पृथ्वी से हमारी प्रार्थना है कि वह हमें नाना प्रकार के धन, मणियाँ तथा स्वर्ण प्रदान करे। वस्तुतः वसु नामक रत्नों को धारण करने और प्रदान करने के कारण यह धरती वसुदा कहलाती है। यही पृथ्वी दिव्य गुणों से युक्त होने के कारण देवी भी है। हम इससे प्रार्थना करते हैं कि हे वसुधा देवी, तू हमें नाना रत्न तथा धन प्रदान करती हुई प्रसन्न मन से हमें धारण कर।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४५

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ।।

मानव को बसाने वाली यह धरती क्या है मानो विविध रंगों से, सुगंधों से युक्त पुष्पों का एक सुन्दर उद्यान है। इसमें जिन मनुष्यों का निवास हैं, वे यों तो एक सी ही आकृति और प्रकृति के हैं। नीति के वाक्य में वर्णित आहार, निद्रा, भय आदि कर्म और प्रवृत्तियाँ तो उनमें एक सी ही हैं, किन्तु रूप, रंग आकार, प्रकार, शरीर की लम्बाई, ऊँचाई और मोटाई में वे भिन्न हैं। इतना ही नहीं, वे अपने भावों और विचारों को व्यक्त करने के लिये नाना प्रकार की बोलियाँ भी बोलते हैं। इस धरती पर क्या कोई ऐसा भी समय था जब इस पर बसने वाले सभी मनुष्यों की भाषा एक ही थी। इसका स्पष्ट उत्तर देना कठिन है। यदि कभी कोई ऐसा समय रहा भी हो, जब कि सभी लोग एक ही भाषा का प्रयोग करते थे, तब भी उनकी उच्चारण-भिन्नता और शरीरस्थ ध्वनि यंत्रों की प्रक्रिया भिन्नता के कारण बोलने में विविधता आ जाना तो स्वाभाविक ही था।

महाभाष्य में उल्लेख किया गया है कि उच्चारण भिन्नता के कारण ही म्लेच्छ और दस्यु जातियाँ आर्यों से भिन्न मान ली गईं। अतः पृथ्वी सूक्त का यह मंत्र स्पष्ट घोषणा करता है कि नाना प्रकार की वाणियाँ बोलने वाले ये मनुष्य रहते तो इस धरती पर ही हैं, किन्तु विविध प्रकार की बोलियाँ बोलने वाले इन लोगों को धारण करने में धरती को उसी प्रकार कोई कठि-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाई नहीं होती जिस प्रकार एक ही घर के भिन्न-भिन्न योग्यता वाले सदस्य एकमना होकर उसमें निवास करते हैं।

वाणी की भिन्नता की ही तरह धरती के निवासी इन मानवों के कर्त्तव्य कर्म भी भिन्न हैं। यहाँ धर्म शब्द मनुष्यों के कर्त्तव्यों, कर्मों, व्यवसायों और पेशों के लिये प्रयुक्त हुआ है। इससे वह अर्थ नहीं लिया जा सकता जो महाभारत, मनु तथा कणाद के वैशेषिक दर्शन में प्रयुक्त धर्म का अर्थ है। निश्चय ही धरती पर बसने वाले लोग अपनी-अपनी शिक्षा, योग्यता, पुरुषार्थ और श्रम के अनुसार भिन्न-भिन्न कर्म जीविका निर्वाहार्थ करते हैं, और ये विभिन्न कर्त्तव्य ही उसके धर्म हैं। कोई शिक्षित तथा अध्ययनशील व्यक्ति अध्यापक के व्यवसाय को स्वीकार करता है तो कोई अन्य अपनी प्रशासन कुशलता तथा नीतिमत्ता के बल पर राज्य शासन में सहयोग देता है। अपनी प्रबंध कुशलता, व्यवहार पटुता तथा आर्थिक सूझबूझ के कारण कोई अन्य, देश के वाणिज्य व्यवसाय को उन्नत बनाने में लगा है। इसी प्रकार सहस्रों प्रकार के छोटे-बड़े शिल्प व्यवहार आदि मनुष्यों ने अपनी-अपनी रुचि एवं योग्यता के अनुसार अपना रक्खे हैं। किन्तु धरती माता की महिमा भी कितनी प्रशंसनीय है। वह नाना धर्मों में संलग्न अपने इन पुत्रों को अपनी वात्सल्यमयी क्रोड़ में उसी प्रकार विश्राम प्रदान करती है, जैसे कोई माता सायं काल के समय अपने कार्यों को समाप्त कर घर लौटने वाले नाना व्यवसायों में रत अपने पुत्रों को शरण देती है।

धरती माता की दानशीलता का कोई पारावार नहीं है। उसने नाना द्रव्यों की धारायें हमारे लिये प्रवाहित कर रक्खी हैं। धरती से प्राप्त ये धन की धारायें कहीं तो अन्न के रूप में, कहीं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फल और औषधि रूप में, अन्यत्र मूल्यवान रत्न, मणि और ऐसी ही महार्घ वस्तुओं के रूप से हमें निरन्तर प्राप्त होती रहती हैं। अनादि काल से विविध धनों की इस धारा को सहस्रधा प्रवाहित रखने वाली यह मातृभूमि हमारे लिये उस दुधारु गाय के तुल्य है, जो अपने वत्स को दुग्ध पिलाने के लिये सर्वात्मना एकाग्र होकर खड़ी हो जाती है। उस समय वह तनिक भी हिलती डुलती नहीं और उसका बछड़ा तन्मयता से माता का क्षीरपान करता रहता है। वेदों की उपमायें भी स्वाभाविक तथा मानव एवं इतर प्राणियों के क्रिया व्यापारों के सूक्ष्म अध्ययन से युक्त हैं। आपने उस गाय को देखा होगा जो चाहे कितनी ही चंचल और उद्दण्ड क्यों न हो, किन्तु जब उसे अपने बछड़े को दूध पिलाना होता है, उस समय वह सर्वथा निष्कम्प और अडोल होकर खड़ी हो जाती है। धरती माता से प्राप्त रत्न-धनों की ये धारायें भी उस सीधी सादी गौ की क्षीर धाराओं के तुल्य हैं, जो उस धरती माता ने अपने वत्सों के लिये प्रवाहित की हैं।

४६

**यस्ते सर्पो वृश्चिकस्तृष्टदंश्मा हेमन्तजब्धो भृमलो गुहाशये।
क्रिमिर्जिन्वत् पृथिवि यद्यदेजति प्रावृषि तन्नः सर्पन्मोपसृपद्य-
च्छिवं तेन नो मृड ॥**

पृथ्वी सूक्त के अब तक व्याख्यात मंत्रों में हमें धरती तथा उस पर विद्यमान पदार्थों, प्राणियों, मनुष्यों तथा इतर वस्तुओं से सम्बन्धित नाना विषयों को जानने का अवसर मिला। यदि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज की प्रचलित विधाओं का नाम लें तो नृतत्त्वशास्त्र (Anthropology), समाजशास्त्र (Sociology), वनस्पतिशास्त्र (Botany), भूगर्भशास्त्र (Geology), धातुविज्ञान (Metallurgy), अरण्यविज्ञान (Forestry) आदि से सम्बन्धित मंत्र आ चुके हैं। प्रस्तुत मंत्र को प्राणिविज्ञान (Zoology) से जोड़ा जा सकता है। इस धरती पर मनुष्य से भिन्न जो कीट, कृमि, पशु, पक्षी आदि हैं उनकी हजारों, लाखों जातियाँ-प्रजातियाँ है, जिनका विस्तृत अध्ययन प्राणिविज्ञान और कृमिविज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है।

यहाँ उन विषैले जन्तुओं के बारे में वेद का उपदेश युक्त कथन है जो अपने दंश के द्वारा मनुष्य में घोर तृषा उत्पन्न कर देते हैं तथा समय रहते यदि उनके दंश से प्रविष्ट विष को नहीं निकाला जाय, तो मनुष्य को प्राण हानि हो सकती है। ऐसे विषैले जन्तुओं में सांप और बिच्छू प्रधान हैं। ये जीव-जन्तु भी गर्मी में प्रायः अपने बिलों से बाहर निकलते हैं जबकि शीतऋतु की भयंकर सर्दी को न सह पाने के कारण ये छिद्रों तथा धरती के भीतरी स्थानों में ही निवास करते हैं। वर्षा ऋतु में तो कीट-पतंगों की जैसी विविधतापूर्ण सृष्टि देखने में आती है, वैसी अन्य ऋतुओं में कहाँ दिखाई पड़ती है। नाना प्रकार के कीट कृमि हमें घूमते, रेंगते, निकट आते और दूर जाते दिखाई पड़ते हैं। यदि ये हमारे निकट आकर हमें काट लें, तो हमारा महान् अनिष्ट हो सकता है। अतः धरती माता से हमारी प्रार्थना है कि वह वर्षा काल में यथेच्छ तृप्तिपूर्वक विचरण करने वाले इन विषैले कीटों से हमें बचाये। ऐसे कृमि हमारे पास न आवें और हम उनके दंश से पीड़ित न हों। संक्षेप में, हमारी प्रार्थना यही है कि हे धरती माता, जो हमारे लिये शिव है, कल्याणकारी और मंगलमयी है, उसी से हमें सुखी कर।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४७

**ये ते पन्थानो बहवो जनायना रथस्य वर्त्मानसश्च यातवे ।
यैः संचरन्त्युभये भद्रपापास्तं पन्थानं जयेमानमित्रमतस्करं
यच्छिवं तेन नो मृड ।।**

सहस्रों योजनों में विस्तृत इस पृथ्वी पर मनुष्य ने सुखपूर्वक चलने, एक स्थान से अन्य स्थान में जाने तथा सर्वत्र चक्रमण करने के लिये नाना प्रकार के पथों और राजमार्गों का विकास किया है। ये रास्ते त्रिविध प्रकार के हैं। प्रथम तो वे रास्ते हैं जिन पर एकाकी मनुष्य सुखपूर्वक चल सकता है। मुख्य पथों से हटकर मनुष्य ऐसी पगडंडियों का भी निर्माण कर लेता है जिनसे वह सुगमता पूर्वक दुर्गम खाई, खन्दकों तथा मार्ग की अन्य बाधाओं को पार कर अपने गन्तव्य तक पहुंच जाता है। इस धरती पर ऐसे भी मार्ग हैं जिन पर छोटी बैलगाड़ियाँ तथा अन्य वाहन चल सकते हैं। तीव्रगामी रथों तथा अन्य यंत्रचालित वाहनों के चलने के मार्ग भी हैं। निष्कर्षतः, इन मार्गों की विविधता ही इनकी विशेषता है।

इन राजमार्गों के विषय में एक अन्य महत्त्वपूर्ण बात मंत्र में कही गई है। इन मार्गों का उपयोग तो सर्व सामान्यजनों के लिये है, इसीलिये इन्हें राजमार्ग या Thorough Fare कहा जाता है। यदि भद्र आचरण वाले सज्जन पुरुष इन पर चलते हैं, तो दुष्टों और पापियों को भी इन पर चलने की कोई मनाई नहीं है। भद्र और पापी सभी इन मार्गों का उपयोग करते हैं। रास्ते चलते किसी मुसाफिर को देखकर प्रथम दृष्टि में यह कहना मुश्किल है कि यह दुष्ट है या धर्मात्मा। किन्तु हम एक काम

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो कर ही सकते हैं। हमारा यह पुरुषार्थ होना चाहिए कि हम इन राजमार्गों को निष्कण्टक बनायें। हमारी शासन व्यवस्था और आरक्षी व्यवस्था इतनी चुस्त तथा उत्तम हो कि कोई शत्रु या तस्कर इन मार्गों का उपयोग न कर सके। वस्तुतः देश के सीमान्त प्रान्त के मार्गों पर चोरों और तस्करों द्वारा प्रतिबंधित वस्तुओं को इस पार से उस पार ले जाने की आशंका हर समय बनी रहती है। इसी प्रकार सीमा पर सुरक्षा व्यवस्था की कमी के कारण कभी-कभी शत्रु सेना का प्रवेश भी इन मार्गों से हो जाता है जो अन्ततः देश की सुरक्षा के लिये घातक होता है।

मंत्र की समाप्ति इस कामना के साथ होती है कि हम उन सभी मार्गों को जीत लें और अपने अधीन कर लें जिनसे हमारे शत्रुओं तथा तस्करों के आने-जाने की संभावना रहती है। गत मंत्र की अन्तिम पंक्ति की आवृति यहाँ भी हुई है—यच्छिवं तेन नो मृड। जो कुछ हमारे लिये कल्याणकर शिव है, उसका हे मातृ-भूमि, तू हमारे लिये विधान कर। उस शिव तत्त्व से हमें भी सुखी बना।

४८

मल्वंबिभ्रती गुरुभृद् भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः।
वराहेणपृथिवी संविदाना सूकराय वि जिहीते मृगाय ।।

पृथ्वी का धारण सामर्थ्य भी अकल्पनीय है। वह पर्वतों जैसे विशालकाय प्रस्तर पुञ्जों को धारण करती है। उस पर रक्खे हुए सारे पदार्थों और प्राणि समुदाय के गुरुतर भार का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखा-जोखा करना भी असम्भव है। इसी प्रकार पृथ्वी की सहनशीलता का भी क्या कहना। धरती पर सभी प्रकार के सत्कर्म और दुष्कर्म किये जाते हैं, किन्तु सहिष्णुता का अप्रतिम प्रतिमान यह धरती, उन सभी सुकृतों और दुष्कृतों को समान रूप से धारण करती है। इस धरती पर भद्र पुरुष और पापी पुरुष समान रूप से मृत्यु को प्राप्त होते हैं किन्तु धरती नितान्त वीतराग होकर इन अच्छे-बुरे लोगों की आपद-विपत्तियों को निर्विकार भाव से सहन करती है।

मंत्र के द्वितीय पाद में वराह, सूकर और मृग, ये तीन पद पड़े हैं। प्रचलित अर्थ में वराह और सूकर तो एक ही अर्थ देते हैं जब कि हरिण के लिये मृग का प्रयोग होता है। किन्तु वैदिक संस्कृत में वराह मेघ का वाचक है अतः यहाँ मेघों से धरती का मिलन और फलतः वृष्टिकर्म का निष्पन्न होना ही अभिप्रेत है। मेघों की कृपा से ही धरती का सौन्दर्य और उसकी प्रजनन शक्ति सम्भव होती है। यह धरती सूकर—अर्थात् उत्तम कर्म करने वालों और मृग-गतिशील तथा पवित्राचरण वाले लोगों के लिये ही मंगल प्राप्त कराती है। कालान्तर में मंत्र में प्रयुक्त वराह और सूकर के पृथ्वी से सम्बन्ध को लेकर वराह रूपी विष्णु द्वारा जल राशि से पृथ्वी का उद्धार करने की पौराणिक कल्पना का जन्म हुआ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४९

ये ते आरण्याः पशवो मृगा वने हिताः सिंहा व्याघ्राः पुरुषादश्चरन्ति ।
उलं वृकं पृथिवि दुच्छुनामित ऋक्षीकां रक्षो अप बाधयास्मत् ।।

वेदों में पशुओं का ग्राम्य और आरण्यक—इस प्रकार दो प्रकार से विभाजन किया गया है। गाय, बैल, भैंस, बकरी, भेड़, ऊंट, अश्व आदि ग्राम्य पशु हैं जो सर्वथा अहिंसक होने के कारण मनुष्य के लिये अत्यन्त उपयोगी तथा जीवन यात्रा के सहायक हैं। इनसे भिन्न आरण्य पशु मांसाहारी, हिंसक तथा उग्र स्वभाव वाले होते हैं। प्रस्तुत मंत्र में इन्हीं हिंसक जंगली जानवरों की चर्चा है तथा प्रार्थना की गई है कि धरती माता हमें इन तीक्ष्ण स्वभाव वाले, छिपकर प्रहार करने वाले मांसाहारी प्राणियों से बचाये। आरण्य पशु तथा मृग (वन में विचरण करने वाले) वे हैं जो जंगल में ही रहते हैं तथा अवसर आने पर मनुष्य को भी खा जाते हैं। जंगलों में ये निर्बाधगति से विचरण करते हैं। उधर भेड़िये और दुष्ट चाल वाले भालू और रींछ भी होते हैं जो अपने शिकार पर छिप कर हमला करते हैं। हमारी धरती माता हमें इन हिंसक प्राणियों से बचाये और इन्हें हमसे दूर रक्खे।

मंत्र में सब प्रार्थनाएं तो धरती से ही की गई हैं किन्तु मुख्यतः यह उपदेश धरती का शासन एवं पालन करने वाले उन लोगों के लिये है, जिन पर राष्ट्र रक्षा का भार है। वे लोग

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही सामान्य नागरिकों को हिंसक जानवरों के भय से मुक्त कर सकते है। ◎

५०

ये गन्धर्वा अप्सरसो ये चारायाः किमीदिनः।
पिशाचान्त्सर्वा रक्षांसि तानस्मद् भूमे यावय ।।

यदि जंगली जानवर मनुष्यों के लिये घातक होते हैं तो उनसे बढ़ कर मानव जाति के शत्रु वे लोग हैं जो मनुष्य के चोले में होते हुए भी पिशाचों और राक्षसों के तुल्य क्रूरकर्मा हैं। ऐसे ही मानवता का घात करने वाले अनिष्टकर्मा लोगों का वर्णन प्रस्तुत मंत्र में हुआ है। सर्व प्रथम तो मनुष्य को विलास-वासना में रत स्त्री पुरुषों से स्वयं को बचाना चाहिये। इन विलासी लोगों के लिये गन्धर्व और अप्सरा शब्दों का प्रयोग हुआ है। शतपथ ब्राह्मण में स्त्री की कामना करने वाले अत्यन्त विलासी पुरुष को गन्धर्व कहा है—योषित्कामा वै गन्धर्वाः (३।२।४।३) 'अप्सरा' अत्यन्त विलासपरायण स्त्रियों के लिये प्रयुक्त होता है। पुराण कालीन कथाओं की अप्सरायें देव जाति की वारांगनाओं से भिन्न नहीं थीं। इसी प्रकार पुरुषार्थ-हीन निर्धन व्यक्ति भी दूसरों की धन सम्पत्ति को छीनने का प्रयास करते हैं। वे अन्यों के द्रव्य को ललचाई दृष्टि से देखते हैं और उसे हथियाने का प्रयास करते हैं। इन सभी से हम बचें मंत्र के द्वितीय पाद में पिशाच और राक्षसों का उल्लेख है। मांसाहारी और अन्यों के स्वत्व को छीनने वाले पिशाच हैं जब कि छिपकर हानि पहुंचाने वाले, नक्तंचर—रात्रि को विचरण कर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपराध करने वाले राक्षस हैं। ऐसे पिशाचों और राक्षसों को यह धरती हम से दूर करे और हम अपनी शासन व्यवस्था को इस प्रकार सुदृढ़ करें ताकि विलासी लोग न तो हमारे नागरिकों को वासना पूर्ति के मार्ग पर चला सकें और न दुष्ट प्रकृति के लोग ही उनका अनिष्ट करने में समर्थ होवें।

५१

यां द्विपादः पक्षिणः संपतन्ति हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि।
यस्यां वातो मातरिश्वेयते रजांसि कृण्वंश्च्यावयश्च वृक्षान्।
वातस्य प्रवामुपवामनु वात्यर्चिः॥

धरती पर विचरण करने का अधिकार प्राणिमात्र को है। बुद्धि में अत्यन्त प्रबल तथा मानसिक और नैतिक विकास की उच्चतम सीमा तक पहुंचा मनुष्य यदि अपने क्रिया व्यापारों के लिये इस पृथ्वी को आधार के रूप में प्रयुक्त करता है, तो इसी धरती पर पशु, पक्षी, कीट, पंतग आदि भी विचरण करते हैं। इसी प्रसंग में धरती पर निवास करने वाले कुछ पक्षियों का उल्लेख इस मंत्र में हुआ है। इस धरती पर दो पैर वाले पक्षी, यथा हंस, गरुड़ तथा गिद्ध आदि पक्षी सतत उड़ते रहते हैं। पक्षियों की जाति-प्रजाति का ज्ञान एक पृथक् विषय है। यहाँ तो संकेत रूप में हंस, सुपर्ण तथा शकुनि का ही उल्लेख किया गया है।

इसी धरती पर वायु की भी मनोहारी क्रीड़ा दृष्टिगोचर होती है। जब यह वायु अत्यन्त तीव्र वेग से चलता है तो धूल के कण सर्वत्र उड़ने लगते हैं। 'रजांसि' मिट्टी तथा जल कण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों के लिए ही वैदिक साहित्य में प्रयुक्त हुआ है। अतः यहाँ यह अर्थ समीचीन है कि वायु के द्वारा जहाँ धूल के कण सर्वत्र फैलते हैं वहाँ उसी के वेग से जल कणों के भण्डार बादल भी यथा समय वर्षा करते हैं। जब वायु का वेग और भी प्रचण्ड हो जाता है तो वह वृक्षों को भी उखाड़ फेंकता है। यही वायु प्रकाश के विस्तार तथा संकोच का भी कारण बनता है। इस प्रकार वायु के तीन कार्यों का मंत्र में उल्लेख हुआ है(१)—मिट्टी तथा जल के कणों को विकीर्ण करना (२) वृक्षों को उखाड़ फेंकना (३) प्रकाश की किरणों को विस्तार तथा संकोच देना।

५२

यस्यां कृष्णमरुणं च संहिते अहोरात्रे विहिते भूम्यामधि। वर्षेण भूमिः पृथिवी वृतावृता सा नो दधातु भद्रया प्रिये धामनिधामनि ॥

हमारी यह पृथ्वी सौर मण्डल का एक सदस्य ग्रह है। यह अपनी कक्षा पर तो परिक्रमा करती ही है, सूर्य के चारों ओर भी घूमती है। इस प्रकार इसका जो भाग सूर्य के सामने आ जाता है वहाँ प्रकाश की किरणें बिखर जाती हैं। इस स्थिति को हम दिन कहते हैं। धरती का जो हिस्सा सूर्य के समक्ष नहीं रहता वहाँ सघन अंधकार रहता है, जो रात्रि की स्थिति है। इस प्रकार काले अंधकार से परिपूर्ण रात्रि तथा प्रकाश युक्त उज्ज्वल दिन-यह अहो रात्रि का चक्र निरन्तर चलता रहता है। उसमें कभी कोई व्यतिक्रम नहीं होता। जिस प्रकार दिन और रात का होना एक नियमित प्राकृतिक क्रिया है उसी प्रकार इस धरती

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का वर्षा से जलाप्लावित होना भी निसर्ग का एक अद्भुत वरदान है।

इस प्रकार सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाने वाली इस पृथ्वी से हमारी कामना है कि यह हमें प्रत्येक स्थान में प्रिय और रम्य स्थिति में धारण किये रहे। हम जिस स्थान और स्थिति में भी रहें, वह हमारे लिये सुखद, सुन्दर और आनन्ददायी हो। रात्रि और दिन के उल्लेख के द्वारा मंत्र हमें यह भी शिक्षा देता हैं कि जिस प्रकार अहो रात्रि का यह क्रम बिना किसी बाधा और व्यवधान, नियमित रूप से चलता रहता है, उसी प्रकार हमारे जीवन में भी एक निश्चित क्रम तथा व्यवस्था होनी चाहिए। हम अनुशासनबद्ध जीवन व्यतीत करें और हमारी दिनचर्या, ऋतुचर्या, यहाँ तक कि समग्र जीवनचर्या का एक-एक क्षण नियम और संयम की डोर से बंधा रहे। ऐसा होने पर ही धरती हमारे लिये रम्य और प्रिय धाम प्रदान करेगी।

५३

द्यौश्च म इदं पृथिवी चान्तरिक्षं च मे व्यचः।
अग्निः सूर्य आपो मेधां विश्वे देवाश्च सं ददुः॥

मनुष्य के लिये आगे बढने, प्रगति करने तथा ज्ञान एवं शक्ति का विस्तार करने की कोई सीमा नहीं है। यह द्यौ लोक हमें प्रेरित करता है कि हम उसके अनन्त विस्तार को जानें। विस्तृत अन्तरिक्ष लोक हमें अव्याह्वत गति से ऊपर उठने की प्रेरणा करता है। धरती का विस्तार भी हमें अपने कार्य व्यापारों को निरन्तर फैलाने और बढाने का संकेत देता प्रतीत होता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। धरती पर रहने वाले मनुष्य के लिये संकोच का कोई कारण नहीं है। वह अपने ज्ञान का विस्तार करे, अपने गुणों का विस्तार करे, अपने कर्मों का विस्तार करे। धरती का यह विस्तृत वक्ष, अन्तरिक्ष और द्यौ लोक का अनन्त विस्तार यह सब उसे विराट् और विशाल बनने का संदेश देते हैं।

फिर प्रकृति ने तथा उसके देवताओं ने मनुष्य को एक और अनुपम देन दी है, वह है मेधा अर्थात् धारणावती बुद्धि। इस बुद्धि के विकास में जहाँ अग्नि, सूर्य और जल आदि भौतिक पदार्थ कारण बनते हैं, वहाँ मानवी प्रज्ञा को विकसित करने में न्यूनाधिक रूप से सभी देवों-दिव्य शक्तियों का भी योगदान रहता है। अग्नि ज्ञान और चेतना का प्रतीक है। सूर्य, प्रकाश और दिव्यता का संदेश देता है। जल शीतलता तथा कोमलता के गुणों को बतलाता हैं। ये सभी तत्त्व मनुष्य को मेधावी बनाने में कारण बनते हैं। उधर माता, पिता, गुरु, आचार्य आदि देव तो अपनी सन्तान तथा शिष्य समुदाय की मेधा वृद्धि के लिये सतत जागरूक रहते हैं। इस प्रकार मानवा प्रज्ञा का विकास इस धरती पर ही होता है और यह पृथ्वी ही मनुष्य को प्रज्ञावान् बनाती है।

५४

अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम्।
अभीषाडस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहि ।।

मनुष्य के पराक्रम और पौरुष का मूल कारण धरती माता से उसका लगाव और उसके प्रति उसकी निष्ठा है। धरती का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह वैदिक स्तवन करने वाला उसका पुत्र गर्वपूर्वक कहता है कि इस मातृभूमि के ऊपर रह कर मैंने अपनी विरोधी शक्तियों पर विजय पा ली है। मैंने अपने शत्रुओं को पराजित कर दिया हैं और अब मैं उत्कृष्ट नाम और प्रशंसित कीर्ति वाला बन गया हूँ। मैंने अपने उन सभी विरोधियों को पराजित किया है, जो प्रत्येक दिशा से मुझ पर आक्रमण कर मुझे जीतने का स्वप्न देखते थे।

वेद मंत्रों में सर्वत्र विजय की भावना ही दृष्टिगोचर होती है। निराशा, पराजय, अवसाद और पलायन के स्वर से वैदिक-साहित्य सर्वथा अपरिचित है। उसे तो जीवन के प्रत्येक क्षण में अपनी विजय ही दिखाई देती है। सभी दिशायें उसे विजय का संदेश देती हैं। वह जिस दिशा में भी चला जाये, विजय उसका स्वागत करेगी और उसके शत्रुओं का पराभव होगा। प्रत्येक दिशा में लक्ष्य प्राप्ति के लिये बढते जाना ही धरती माता के पुत्र का ध्येय है।

५५

अदो यद्देवि प्रथमाना पुरस्ताद्देवैरुक्ता व्यसर्पो महित्वम्।
आ त्वा सुभूतमविशत्तदानीमकल्पयथाः प्रदिशश्चतस्रः॥

यों तो मातृभूमि की महिमा का गान सामान्य रूप से वे सभी लोग करते हैं जिन्होंने उसके महत्त्व को अनुभव किया है, किन्तु विद्वान्, विचारशील तथा दिव्य गुणों को धारण करने वाले देवों ने इस धरती की महिमा का विशेष रूप से गान किया है। यदि इस धरती के निवासी देव कोटि के हैं, तो नाना दिव्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदार्थों को देने वाली यह पृथ्वी स्वयं देवी है। इसी धरती को मंत्र में 'पृथमाना' अर्थात् विस्तृत होने वाली कहा है। 'पृथु विस्तारे' से बना पृथ्वी शब्द धरती के फैलाव और विस्तार का द्योतक है। मनुष्य तथा अन्य प्राणियो की आश्रयभूता यह धरती अपने इसी गुण के कारण महत्त्व प्राप्त करती है। इस अवस्था में इसमें नाना प्रकार के सुन्दर ऐश्वर्य प्रविष्ट होते हैं और यह ऐश्वर्यवती (सुभूतम) पृथ्वी अपने पर निवास करने वालों को भी ऐश्वर्य देती है। इस प्रकार धरती की चारों दिशाओं में रहने वाले लोगों को यह माता सामर्थ्यवान् बनाती है।

धरती की यह विशेषता है कि उसमें किसी व्यक्ति, वर्ग, जाति अथवा लिंग के लिये कोई पक्षपात नहीं है। जिसने भी धरती को माता कहा, यह उसके लिये अजस्र ऐश्वर्य, धन, धान्य, वैभव का प्रवाह उपस्थित कर देती है। उसकी इसी दानशीलता के कारण गत युग के देवों ने उसकी महिमा का यशोगान किया और आगे वाले भी करते रहेंगे।

५६

ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधि भूम्याम् ।
ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते ।।

मातृभूमि के यश गान के लिये, उसकी महिमा का वर्णन करने के लिये कोई स्थान या समय निश्चित नहीं है। मंत्र का अभिप्राय इस तथ्य को स्पष्ट कर देता है कि हम चाहे जहाँ भी रहें, जिस स्थिति या अधिकार में रहें, हमें अपनी धरती माता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिये प्रशंसा युक्त, चारु एवं हित की बात ही कहनी है। इसी भाव को स्पष्ट करते हुए कहा गया कि इस धरती पर ग्राम भी हैं जहाँ के निवासी पंचायतों और ग्रामसभाओं के द्वारा अपने पारस्परिक हित की योजनायें बनाते हैं। उन ग्रामों की समितियों में हम मातृभूमि के हित की बात ही बोलें। अनेक लोग ऐसे भी हैं जो अभी ग्राम्य या नागर सभ्यता को नहीं अपना सके हैं। वे वनों में रह कर आरण्यक जीवन ही व्यतीत कर रहें हैं। वे भी धरती माता के दृढ़ सेवक हैं और उनसे भी हमारी यही अपेक्षा है कि वे स्वदेश और स्वभूमि के हित की बात ही सोचें और करे।

उधर राष्ट्र के संचालन और शासन के लिये उच्चतर सभाओं और समितियों (विधान सभाओं तथ संसदों) का गठन किया जाता है। इन विधायी सभाओं के सभासदों को भी भूमि के हित की बात करने की प्रेरणा दी गई है। कभी कभी युद्ध की परिस्थिति भी पैंदा हो जाती है जब कि स्वराष्ट्र की रक्षा के लिये हमें आक्रमणकारी परकीयों से युद्ध भी करना पड़ता है। उस समय तो मातृभूमि का हित चिन्तन क्या सैनिक और क्या नागरिक, क्या सेनापति और क्या प्रशासक, सभी के लिये नितान्त आवश्यक होता है। निष्कर्षतः, प्रत्येक स्थिति और परिस्थिति में, प्रत्येक स्थान और वातावरण में मातृभूमि के हित को ही हमें वरीयता देनी है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५७

अश्व इव रजो दुधुवे वि तान् जनान्य आक्षियन्पृथिवीं यादजायत ।
मन्द्राग्रेत्वरी भुवनस्य गोपा वनस्पतीनां गृभिरोषधीनाम् ।

यों तो इस धरती की क्षमाशीलता का कोई पार नहीं है, किन्तु अपने प्रति अनिष्ट करने वालों को यह कभी क्षमा नहीं करती । इतिहास इस बात का साक्षी है कि जिन लोगों ने मातृभूमि से द्रोह किया, इसको हानि पहुंचाने की चेष्टा की अथवा इसे पराधीनता के पाशों में बांधने वालों के षड्यंत्रों में शामिल हुए, उनका सदा ही पराभव एवं विनाश हुआ । कंस, जरासंध और शिशुपाल जैसे आर्यावर्त राष्ट्र की एकता के शत्रु, कृष्ण जैसे राष्ट्र पुरुष की दूर दृष्टि एवं नीतिमत्ता के कारण अपनी कुटिल चालों को पूरा नहीं कर सके । अन्य भी जिन लोगों ने मातृभूमि का अनिष्ट चिन्तन किया, उन्हें इस धरती ने उसी प्रकार झाड़ कर दूर फेंक दिया जिस प्रकार मस्ती में आया घोड़ा धरती पर लोटते समय अपने शक्तिशाली खुरों से मिट्टी को इधर-उधर उछाल देता है । धरती की दुष्टोन्मूलन की यह प्रवृत्ति कोई आज की नहीं है, यह तो उसकी सहजात वृत्ति है । विधाता ने उसे दुष्ट दलन का सामर्थ्य उसी दिन दे दिया, जब उसने इसकी रचना की थी ।

मंत्र के द्वितीय पाद में धरती माता के कुछ अन्य गुण एवं विशेषतायें भी बताई गई हैं । यह पृथ्वी मन्द्रा-स्वयं हर्षोत्फुल्ल तथा अपने निवासी जनों को हर्षित करने वाली है । यह अग्रेत्वरी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है—अपने नागरिक जनों को अग्रगामी बनाती हैं। यह समस्त लोकों—निवास योग्य स्थानों की रक्षा करती है तथा वनस्पतियों एवं औषधियों को धारण करती है। ऐसे नाना गुणों वाली भूमि माता का हम कीर्तन क्यों न करें ?

५८

यद्वदामि मधुमत्तद्वदामि यदीक्षे तद्वनन्ति मा।
त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान्हन्मि दोधतः ।।

सच्चे राष्ट्रभक्त कैसे हों, इसी विचार को प्रस्तुत मंत्र में रक्खा गया है। वाणी में मधुरता उनका प्रथम गुण होता है। वे जो कुछ बोलते हैं, वह श्लक्ष्ण, मधुर तथा अन्यों को मोहित करने वाला होता है। वे सदा जागरूक तथा सतर्क रहते हैं। जो कुछ देखते हैं उसका पूरा लाभ उठाते हैं। धरती की सुरक्षा के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम संसार में जो कुछ भला बुरा देखें, उसके अनुकूल ही अपनी प्रतिक्रिया भी प्रकट करें। सावधानी और देश रक्षा में सतत् चौकन्ना रहना हमारे लिये आवश्यक है। इस प्रकार स्वकर्त्तव्य के प्रति सदा जागरूक रहने वाला नागरिक स्पष्ट कहता है कि इन गुणों को धारण कर वह तेजस्वी एवं प्रतापी (त्विषीमान्) बन गया है। अब वह वेगवान् और गतिशील (जूतिमान्) बन गया है। शत्रुदल पर उसका प्रहार असहनीय होता हैं और उसकी गति भी मापे जाने योग्य नहीं है।

इस प्रकार सब प्रकार से शक्तिशाली, बलशाली और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतापी राष्ट्रभक्त नागरिकों ने अपने इन शत्रुओं को सम्पूर्ण रूप से परास्त कर दिया है, जो किसी भी कारण से क्रुद्ध होकर उसकी धरती पर चढ आये थे। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि यह मंत्र राष्ट्र के नागरिकों को मधुर भाषी, दूरदर्शी, तेजस्वी एवं प्रतापी, वेगवान् और गतिशील तथा शत्रु के दमन में सब प्रकार से समर्थ बनने की प्रेरणा देता है।

५६

शन्ति वा सुरभिः स्योना कीलालोध्नी पयस्वती।
भूमिरधि ब्रवीतु मे पृथिवी पयसा सह ।।

धरती माता के नाना गुणों का पुनः स्मरण करता हुआ राष्ट्र भक्त पुरुष कहता है, हे मातः, तू शान्ति प्रदायिनी है, गौ की भांति सुगन्धि युक्त तथा हमें दुग्ध प्रदान करने वाली है, तू स्योना अर्थात् सब प्रकार के सुख प्रदान करने वाली है। जिस प्रकार गाय के स्तनों में दूध भरा रहता है, इस प्रकार तेरे वक्ष में भो अमृत के तुल्य अनेक मिष्ट पदार्थ भरे हैं। तू सच्चे अर्थों में पयस्वती अर्थात् दुग्धादि पौष्टिक पदार्थों को स्वयं धारण करने वाली तथा अन्यों को देने वाली है।

वस्तुतः पृथ्वी और गौ में अनेक समानतायें हैं। गौ स्वभाव से ही सहनशील, वत्सल, सीधी और सरल होती है। धरती का स्वभाव भी शान्ति युक्त है और वह अपने निवासियों के लिये सब प्रकार से सुखदायिनी है। गाय के तुल्य ही अन्न एवं जल आदि पदार्थ धरती से उसी प्रकार हमें प्राप्त होते हैं, जिस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार गौ से दुग्ध प्राप्त होता है। इन्ही कारणों से धरती का एक नाम गौ भी है। जिस प्रकार गाय के लिये 'सुरभि' शब्द का प्रयोग होता है उसी प्रकार पृथ्वी के लिये भी इस शब्द का प्रयोग किया जाता है। पृथ्वी भी सुगन्धि युक्त है, अतः उसका सुरभि नाम सार्थक है। मंत्र में धरती को विस्तारवती होने के कारण 'पृथिवी' कहा गया और उससे प्रार्थना की गई कि वह हमारे लिये 'पयसा' अर्थात् अन्न और जल लेकर उपस्थित हो। मंत्र में 'ब्रवीतु' का प्रयोग हुआ है। इसका अर्थ है बोले। धरती का बोलना यही है कि वह अन्न एवं जल आदि पदार्थ हमारे लिये प्रस्तुत करती है।

६०

यामन्वैच्छद्धविषा विश्वकर्मान्तरर्णवे रजसि प्रविष्टाम्।
भुजिष्यं पात्रं निहितं गुहा यदाविर्भोगे अभवन्मातृमद्भ्यः॥

देखा जावे तो यह धरती जल समूह तथा मिट्टी के ढेर से भिन्न नहीं है। भूतत्त्वविज्ञान यह बताता है कि पृथ्वी पर आरम्भ में जल तत्त्व ही प्रधान था। धीरे-धीरे ये सागर और महासागर सिकुड़ते गये और मिट्टी बाहर निकलने लगी। वही मिट्टी जब कठोर होती गई, तो उसने दृढ़ भूमि तथा उसके अंगभूत पत्थर एवं चट्टानों का रूप धारण कर लिया। इस धरती को वर्तमान रूप में लाने का कार्य परमात्मा का है जिसे वेद में 'विश्वकर्मा' के नाम से सम्बोधित किया गया है। मनुष्य भी जब वैयक्तिक स्वार्थ का त्याग कर विश्व हित के लिये कर्म करने लगता है तो उसकी भी विश्वकर्मा संज्ञा हो जाती है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धरती ने हमारे लिये नाना प्रकार के भोज्य पदार्थ तथा अन्य अनेक प्रकार के पेय पदार्थ प्रस्तुत किये हैं। किन्तु ये पदार्थ उसे ही प्राप्त होते हैं जो पुरुषार्थ के द्वारा इन्हें ग्रहण करने में समर्थ होता है। जिस प्रकार माता की सम्पत्ति पर उसके पुत्रों का ही अधिकार होता है, उसी प्रकार धरती के प्रति माता तुल्य व्यवहार करने वाले उसके भक्त और आज्ञाकारी नागरिकों के लिये ही उपर्युक्त भोग्य सामग्री स्वतः ही प्रकट हो जाती है।

वस्तुतः अन्न, जल, आदि पार्थिव वस्तुएं अपनी कारणा-वस्था में तो धरती में पहले से ही मौजूद हैं। आवश्यकता इतनी ही है कि हम अपने श्रम और पौरुष से उन पदार्थों को कृषि आदि कर्म कर प्राप्त कर लें। यह भी तभी सम्भव है जब हम धरती को अपनी माता समझें और उसके द्वारा प्रदत्त भोज्य एवं पेय पदार्थों को स्वपुरुषार्थ से निरन्तर प्राप्त करते रहें।

६१

त्वमस्यावपनी जनानामदितिः कामदुघा पप्रथाना।
यत्त ऊनं तत्त आपूरयाति प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्य॥

यह धरती आवपनी अर्थात् बीज बोने का स्थान है। धरती में ही कृषक बीज बोते हैं और अन्नादि पदार्थ प्राप्त करते हैं। यह धरती ही अखण्डनीया अदिति है। इसका अंग भंग करना तथा इसे किसी भौगोलिक सीमा में विभक्त करना उचित नहीं है। यह सच्चे अर्थों में अदिति है। 'अयं निजः परोवेत्ति गणना लघु चेतसाम्। उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्' जिन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
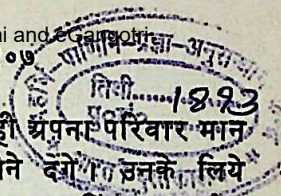
उदार चरित वालों ने समस्त वसुधा को ही अपना परिवार मान लिया वे भला धरती का विभाजन कैसे होने देंगे। उनके लिये तो यह धरती माता है, उसका अंग भंग करना घृणित पाप है। इसी धरती को हम कामदुघा--समस्त कामनाओं की पूर्ति करने वाली कहते हैं। वह हमारी भौतिक आवश्यकताओं को तो पूरा करती ही है, हमारी बौद्धिक और आध्यात्मिक इच्छाओं को पूरा करने की सामर्थ्य भी उसमें है। विस्तार युक्त होने से धरती को 'पप्रथाना' कहा गया। वह अपने ऊपर निवास करने वालों को भी विस्तृत ख्याति दिलाती है।

अनेक गुणों से युक्त इस धरती में भी यदि कुछ न्यूनता रह जाती है तो उसे इसका धारण करने वाला प्रजापति परमात्मा स्वयं पूरा करता है। धरती की न्यूनता उस पर निवास करने वालों की कमियाँ हैं। 'प्रजापति' सम्राट् का वाचक है और परमात्मा का भी। पृथ्वी को सर्वसाधनसम्पन्न बनाने का दायित्व सम्राट् या शासक का है। किन्तु सब गुणों का प्रदाता तथा हमारे अभावों और न्यूनताओं को पूरा करने में समर्थ तो एक मात्र परमात्मा ही है क्योंकि वही ऋत (ईश्वरीय नियम) का उत्पन्न करने वाला तथा विश्व में दैवी अनुशासन स्थापित करने वाला है।

६२

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तुपृथिवि प्रसूताः।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम्॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस मंत्र के साथ पृथ्वी सूक्त उपसंहार की ओर जा रहा है। हमारी धरती माता से कुछ अन्य प्रार्थनाएं भी हैं। हे धरित्री, हम तुझ पर रहने वाले लोग रोग रहित रहें। विशेष रूप से हमें यक्ष्मा जैसे रोग पीड़ित न करें जो सर्वांश में हमारे शरीर को दुर्बल और क्षीण बना देते हैं। रोगशमन की क्षमता जल, मिट्टी, और औषधियों में है और ये तीनों ही पदार्थ हमें पृथ्वी से प्राप्त होते हैं। जब तक यह धरती हमें इन रोगशमनकारी पदार्थों की प्राप्ति कराती रहेगी, तब तक हम सर्वथा नीरोग हो कर इस पृथ्वी पर जीवन धारण करते रहेंगे। शारीरिक स्वास्थ्य तो हमारे लिये काम्य है ही, उससे भी बढ कर आवश्यक है कि हम प्रबुद्ध होकर जीवन धारण करें। ज्ञानवान् और चिन्तनशील नागरिक ही धरती के शृंगार हैं। जड़बुद्धि वाले लोगों को पाकर तो धरती के विषाद की सीमा नहीं रहती। अतः हमारी अन्तिम प्रार्थना यही है कि यह पृथ्वी हमें चिन्तनशील और ज्ञानवान् बना कर हमारी आयु को सुदीर्घ बनाये। धरती तो यह सब हमारे लिये करती ही है। बदले में हम उसे क्या दें। अतः मन्त्रान्त में कहा गया कि हम भी अपनी इस जननी के लिये मूल्यवान् भेंट के पदार्थ लेकर उपस्थित होते रहें। राष्ट्र के लिये जो बलि दी जाती है वह न तो द्रव्य होता है और न कोई अन्य बहुमूल्य पदार्थ। अपितु मातृभूमि की रक्षा और उसकी वृद्धि के लिये तो हमें स्वयं की ही बलि देनी होती है। हम सर्वांश में मातृभूमि के लिये समर्पित होकर ही उसके ऋण से उऋण हो सकते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि-पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान
तिथी........
पु०सं०...1393

६३
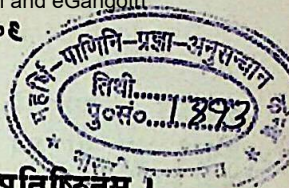
भूमे मार्तानिधेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम् ।
संविदाना दिवा कवे श्रियांमा धेहि भूत्याम् ।।

यह मंत्र इस सूक्त की उपसंहारात्मक फलश्रुति है। मातृभूमि का पुत्र भूमि को माता कह कर सम्बोधित करता है। हे माता भूमि, तू मुझ में भद्र रीति से प्रतिष्ठा को प्राप्त करा। मनुष्य-जीवन की सफलता लौकिक ऐश्वर्यों को प्राप्त करने में उतनी नहीं है जितनी प्रतिष्ठा और सम्मान प्राप्ति में है। सांसारिक वैभव मनुष्य के साथ नहीं जाते, अपितु उसकी कीर्ति ही उसके साथ जाती है। इसीलिये कहा है—'कीर्तिर्यस्य स जीवति' यह यह प्रतिष्ठा भी हमें भद्रतापूर्वक ही प्राप्त हो। अनिष्टकारी साधनों के द्वारा प्राप्त प्रशंसा और प्रतिष्ठा हमारे किस काम की। यदि धरती माता के प्रति हमारी अविचल भक्ति होगी, तो हम निश्चय ही संसार में कल्याणकारिणी समृद्धि तथा ऐश्वर्य प्राप्त कर सकेंगे।

धरती को 'कवि' शब्द से भी सम्बोधित किया गया—कवि क्रान्तदर्शी, गतिशील तथा ज्ञानवान् होता है। धरती भी अपने पुत्र-पुत्रियों को गति, क्रान्ति तथा ज्ञान देती हैं। धरती प्रकाश-युक्त है अतः उसे 'दिवा संविदानां' कहा गया। सूर्य तथा चन्द्र जैसे ज्योतिष्मान् नक्षत्र उसे सतत प्रकाश देते हैं, ऐसी ज्योतिष्मती धरती से हम श्री और भूति की प्रार्थना करते हैं। पार्थिव ऐश्वर्य को भूति संज्ञा से पुकारा जाता है जब कि मनुष्य का मानसिक और आत्मिक सौन्दर्य उसे श्रीयुक्त बनाता है। पृथ्वी सूक्त के समग्र चिन्तन से यह स्पष्ट होता है कि मानव के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वंविध कल्याण में धरती माता की सुनिश्चित भूमिका है। हमारे सुख, सौभाग्य और ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये धरती हमें क्या कुछ देती है, इसका लेखा जोखा करना भी कठिन है। यह धरती ही वास्तविक अर्थ में वसुधा, वसुन्धरा, रत्नगर्भा तथा सुखदात्री है। उसके वैविध्यपूर्ण नैसर्गिक सौन्दर्य तथा उस पर निवास करने वाले मानव तथा मानवेतर प्राणियों के जीवन की एक रम्य झलक इस सूक्त में नितान्त मनोज्ञ शैली में दिखाई गई है।

卐

डॉ. भवानीलाल भारतीय की कुछ पुरस्कृत कृतियाँ

(१) आर्यसमाज के वेद सेवक विद्वान् (अप्राप्य)

(२) महर्षि दयानन्द और स्वामी विवेकानन्द (तुलनात्मक-अध्ययन)

(३) श्रीकृष्ण चरित (महाभारत पर आधारित)

(४) स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली (११ खण्डों में सम्पादन)

(५) नवजागरण के पुरोधा-दयानन्द सरस्वती (प्रामाणिक जीवन चरित)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिथि..... पु०सं०...1993
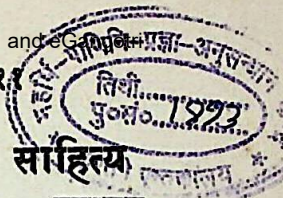
पृथ्वीसूक्त पर उपलब्ध साहित्य

	ग्रन्थ	लेखक	प्रकाशक
१.	वैदिक राष्ट्रगीत	श्रीपाद दामोदर सातवलेकर	लाहौर १९१८ ई.
२.	वेद का राष्ट्रगान	राजनाथ पाण्डेय	शारदा मन्दिर, दिल्ली १९९३ वि.
३.	वेदोपदेश (वैदिक स्वदेश भक्ति)	वेदानन्द तीर्थ	आर्य साहित्य मण्डल, अजमेर २००८ वि.
४.	वैदिक राष्ट्रगीत	सूर्यदेव शर्मा	अजमेर २००९ वि.
५.	वेद का राष्ट्रिय गीत	प्रियव्रत वेद वाचस्पति	गुरुकुल कांगड़ी वि.वि. हरिद्वार, १९५५ ई.
६.	राष्ट्र निर्माण की वेदोक्त योजना	ब्रह्मदत्त सोढ़ा	अजमेर २०२० वि.
७.	धरती माता की महिमा	शिवदयालु	आर्य प्रतिनिधि सभा उ. प्र. २०२० वि.
८.	मातृभूमि वंदना	सुरेशचन्द्र वेदालंकार	सत्य प्रकाशन, मथुरा १९६३ वि.
९.	विश्व का प्रथम राष्ट्रगीत	गणेशदत्त शर्मा 'इन्द्र'	आर्यकुमार सभा, दिल्ली १९६४ ई.
१०.	मातृभूमिसूक्त	रणछोड़दास उद्धव	रविधाम केन्द्र महिदपुर
११.	धरती माता	जगतकुमार शास्त्री	गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली
१२.	वैदिक मातृभूमि वंदना	भवानीलाल भारतीय	दयानन्द अध्ययन-संस्थान, जोधपुर २०५० वि.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
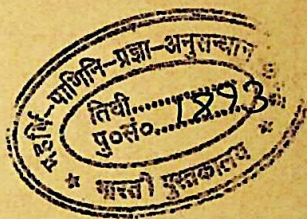
लेखक का परि

भारतीय नवजागरण में ऋषि दया
की भूमिका के अधिकृत व्याख्याता डॉ.
अपने विषय के तलस्पर्शी एवं प्रामाणिक
१९२८ ई. में उनका जन्म राजस्थान
गांव परबतसर में एक मध्यवित्त परि
उच्चशिक्षा भूतपूर्व मारवाड़ राज्य की राजधानी जोधपुर में
हुई। हिन्दी तथा संस्कृत में एम. ए. करने के पश्चात् उन्होंने 'संस्कृत भाषा और साहित्य को आर्यसमाज की देन' विषय लेकर १९६८ में राजस्थान विश्वविद्यालय से डॉक्टर ऑफ फिलासफी की उपाधि प्राप्त की।

वे अपने युवाकाल से ही आर्यसमाज की साहित्यिक और लेखन सम्बन्धी प्रवृत्तियों से जुड़े रहे। उनका लेखनकाल चार दशकों की सुदीर्घ अवधि तक विस्तृत है और इस बीच उनके लगभग ७० ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। उन्होंने आर्यसमाज के ऐतिहासिक और वैचारिक पक्ष को उभारने का सतर्क प्रयास किया है, साथ ही ऋषि दयानन्द के जीवनचरित एवं व्यक्तित्व-विश्लेषणपरक उनके शोधपूर्ण ग्रन्थों की सुधी समाज में सर्वत्र सराहना हुई है। आर्यसमाज विषयक पुरातात्त्विक सामग्री का उन्होंने न केवल गम्भीर अध्ययन ही किया है, अपितु अपने लेखन में उसका उपयोग भी किया है। यही कारण है कि सभी स्वदेशी एवं अन्य देशस्थ शोधकर्मी सम्बन्धित शोधकार्यों में उनसे सहायता एवं परामर्श लेते हैं।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.